हिन्दी साहित्य : पिछला दशक

हिन्दी साहित्य : पिछला दशक

लेखक

प्रतापनारायण टंडन

बी० ए० (ऑनर्स), एम० ए०, सा० र०

हिंदी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ द्वारा प्रकाशित
स्वदेश प्रेस, गौतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ द्वारा मुद्रित
मूल्य साढ़े चार रुपये
प्रथम संस्करण, १९५७

लेखक की अन्य रचनाएँ

आलोचना	● शिवराज भूषण
	● आधुनिक साहित्य
	● हिंदी उपन्यास में वर्ग-भावना
उपन्यास	● रीता की बात
कहानियाँ	● बदलते इरादे
अनुवाद	कैंडिडे

क्रम

निवेदन

गत दस-बारह वर्षों में हिंदी साहित्य का जो कुछ विकास हुआ है, उसके विश्लेषण अथवा मूल्यांकन के प्रयत्न कम हुए हैं। हमारा विचार है कि आज आलोचकों को इस बात का अनुभव करना चाहिये कि उसे आँकना जरूरी है। अर्थात् यह देखना आवश्यक है कि इस समय के बीच साहित्य में जिन तत्वों के आधार पर विभिन्न मोड़ उपस्थित हुए, उनका साहित्यिक —और साथ ही सांस्कृतिक भी— महत्व कितना है और वे किस सीमा तक हिंदी साहित्य के विकास में सहायक या बाधक सिद्ध हुए हैं। हमारा अनुमान है कि उपर्युक्त, तथा उस जैसे अन्य भी कई मौलिक प्रश्नों पर विचार करना आज अत्यंत आवश्यक हो गया है, क्योंकि ऐसा होने पर ही हम उन उपलब्धियों के संकेत पा सकते हैं, जिनमें भविष्य की संभावनाएँ निहित हैं तथा जो हिंदी साहित्य का भावी मार्ग प्रशस्त करने म योग दे सकती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक लघु प्रयास है।

प्रतापनारायण टंडन

हिन्दी कविता

हिन्दी-साहित्य में पिछले दस-पंद्रह वर्षों में जो कविता लिखी गयी है, उसे प्राय: नयी कविता के अंतर्गत ही रखा-समझा जाता है, यद्यपि यह ध्यान देने की बात है कि उसमें नयी या प्रयोगवादी कविता से अलग भी बहुत कुछ है ।

हिन्दी कविता की नवीनतम प्रवृत्तियों को देखने से यह पता चलता है कि उसमें अब भी मुख्य रूप से छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविताओं की ही प्रमुखता है, यद्यपि अब ऐसी भी आवाज उठायी जाने लगी है कि इन विभिन्न वादों की सृजनात्मक संभावनायें विवादास्पद हैं । हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि उपर्युक्त प्रवृत्तियों में से कोई अब समाप्त हो चुकी है और अब उसके अवशेष मात्र ही मिलते हैं और कोई अपने नित्य नये बदलते हुये रूपों को लेकर बराबर सामने आती रही है। कहने का मतलब यह है कि एक दृष्टि से देखने पर सारी हिन्दी कविता अपने में एक विचित्र नयापन लिये हुये, अपने से पहले की काव्य-परंपराओं से विद्रोह-सी करती जान पड़ती है, तो दूसरी दृष्टि से देखने पर वह उन्हीं को आगे बढ़ाती या उनकी बराबर चलती साँसों का प्रमाण देती नजर आती है। अत: हमारे विचार से, उपर्युक्त काव्य-धाराओं की वर्तमान प्रवृत्तियों का पूर्ण अध्ययन करने के लिये यह आवश्यक है कि उन परंपराओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुये उनके महत्व को समझने की चेष्टा की जाय ।

आधुनिक हिन्दी कविता पर छायावादी प्रभाव सीधे अंग्रेजी से आया, लेकिन उससे पहले ही बँगला में रवींद्रनाथ ठाकुर की उन कविताओं का, जिनमें पाश्चात्य आध्यात्म और रहस्य-भावनाओं का स्पष्ट प्रभाव मिलता था, प्रवृत्ति के अनुसार वर्गीकरण करते हुये, उन्हें "छायावाद" संज्ञा दी जाने लगी। इसलिये "छायावाद" शब्द को बँगला से ही हिन्दी में आया मानना चाहिये, भले ही उसका प्रभाव अंग्रेजी से आया हो। मतलब यह कि, जैसा ऊपर कहा गया है, न तो यह प्रवृत्ति ही हिन्दी की अपनी थी और न यह नाम ही। यही कारण है कि हिन्दी में छायावाद के आविर्भाव के बाद, प्रारंभिक काल में, अंग्रेजी और बँगला की पदावली, अनुवाद रूप में, जैसी की तैसी ही मिलती है। उसमें कोई नवीनता नहीं लक्षित होती। लेकिन उपर्युक्त प्रवृत्ति की कविता की शैलीगत विशेषताओं के कारण, हिन्दी के अधिकांश कवियों ने उसे स्वीकार किया और थोड़े ही समय में छायावादी कविताओं की धूम-सी मच गई।

छायावाद का जन्म द्विवेदी युग की पौराणिक सभ्यता से प्रभावित, निर्मित साहित्य के प्रति विद्रोह अथवा प्रतिक्रिया की भावना के फलस्वरूप हुआ था। कुछ लोग उसे आधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध लौकिक चेतना का विद्रोह तथा कुछ उसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह भी मानते हैं।

आचार्य शुक्ल ने "छायावाद" शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया है। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य की कथावस्तु से होता है और जिसमें कवि उस अज्ञात और अनंत प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। और दूसरे, वाक्य-शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में। इसीलिये शुक्ल जी ने हिंदी के

प्रमुख छायावादी कवियों को दो वर्गों में विभक्त किया है। पहले में वह महादेवी को रखते हैं और दूसरे में पंत, प्रसाद और निराला तथा अन्य उन सभी कवियों को, जो प्रतीक-पद्धति या चित्र-भाषा-शैली की दृष्टि से छायावादी कहलाये।

छायावादी कविता की लहर सन् १९४० तक कम होने लगी थी। फिर भी, उसमें जो कुछ बल शेष रह गया था, द्वितीय महा-युद्ध के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों के कारण वह भी जाता रहा। यथार्थवादिता के प्रभाव से अधिक समय तक बच सकना उसके लिये संभव नहीं रहा। इसका व्यापक और गंभीर प्रभाव यह हुआ कि यथार्थ की ओर प्रायः सभी कवि अग्रसर होने लगे—काल्पनिक छायाचित्रों को छोड़कर।

मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि यही प्रगतिवादी कविता का प्रारंभिक युग था।

छायावादी कविता में स्वच्छंदतावाद की बहुलता के साथ ही साथ कल्पना का भी आधिक्य था। अनेक छायावादी कवियों की रचनायें इस कथन का प्रमाण हैं। सुमित्रानंदन पंत की कविता का एक उदाहरण देखिये—

हम सागर के धवल हास हैं
जल के धूम, गगन की धूल
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव
वारि वसन, वसुधा के मूल,
नभ में अवनि, अवनि में अम्बर
सलिल भस्म, मारुत के फूल
हम ही जल में थल, थल में जल
दिन में तम, पावक के तूल।

छायावाद के प्रमुख स्तंभ जयशंकर "प्रसाद" ने जहाँ एक ओर सौंदर्य और प्रेम के कोमल पक्षों से संबंधित श्रेष्ठ गीत लिखे

हैं, वहाँ दूसरी ओर कहीं-कहीं विभिन्न मनःस्थितियों के भी बहुत सशक्त चित्र उपस्थित किये हैं। "कामायनी" से एक उदाहरण देखिये—

है स्पर्श मलय के झिलमिल सा, संज्ञा को और सुलाता है,
पुलकित हो आँखें बंद किये तंद्रा को पास बुलाता है।
व्रीड़ा है यह चंचल कितनी विभ्रम से घूंघट खींच रही,
छिपने पर स्वयं मृदुल कर से क्यों मेरी आँखें मींच रही।
उठती है किरनों के ऊपर कोमल किसलय के छाजन सी,
स्वर का मधु निस्वन रंध्रों में जैसे कुछ दूर बजे बंसी।

सुमित्रानंदन पंत की कविता कोमल और सुकुमार भावों की कविता है। प्रकृति की आकर्षक छवि के प्रति कवि के हृदय में एक सहज ममता है। लेकिन कवि की इस सौंदर्य और प्रेम की कविता पर, अन्य सारी छायावादी कविता की ही भाँति, रहस्य-भावना का आवरण है। कवि को प्रकृति की सुंदर और आकर्षक छवि में भी गूढ़ संकेतों की बहुलता दिखाई देती है—

आज सोये खग को अज्ञात
स्वप्न में चौंका गयी प्रभात
गूढ़ संकेतों से हिल पात
कह रहे स्फुट बात
आज कवि के चिर चंचल प्राण,
पा गये अपना गान।

पंत ने छायावादी प्रवृत्ति को "युगांत" की रचना के साथ परिवर्तित किया। उनका वह संग्रह मानवतावादी समन्वय का उदाहरण है। "युगांत" के दो वर्ष बाद "युगवाणी" प्रकाशित हुई, जिसमें पंत का समन्वयवादी दृष्टिकोण विकास के मार्ग पर अग्रसर होता दिखाई देता है।

छायावाद के परवर्ती युग में पंत ने नये यथार्थ को पूर्ण रूप से तो नहीं स्वीकार किया, परंतु काफी सीमा तक वह उससे समझौता कर सके।

पंत के "ग्राम्या" नामक संग्रह में कहीं-कहीं मध्य वर्ग के चित्रण में ऐसा आभासित होता है कि कवि अपनी अनुभूति को यथार्थपूर्ण और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत कर सका है। इसमें छाया-वादी शब्दावली का प्रयोग किया गया है, जो कुछ-कुछ गद्यात्मकता भी लिये हुए है। यथार्थ भी इसमें मार्मिकता लिये हुए उभरा है। उदाहरण के लिये एक कविता का कुछ अंश देखिये—

माली की मंड़ई से उठ,
नभ-के-नीचे-नभ-सी धूमाली,
मंद पवन में तिरती
नीली रेशम की सी हलकी जाली,
बत्ती जला दुकानों में
बैठे कस्बे के व्यापारी,
मौन मंद आभा में
हिम की ऊँघ रही लंबी अँधियारी

पंत के नये जीवन-दर्शन का आभास उनकी नई कविता-पुस्तकों में मिलता है। उनके "स्वर्ण धूलि" और "स्वर्ण किरण" संग्रह इस तथ्य के परिचायक हैं, कि पंत की कविता में फिर के एक नया मोड़ आया है। इनमें कवि की जो रचनायें संगृहीत हैं, उनमें से अधिकांश का धरातल सामाजिक है। ये कवितायें कवि की अभिव्यक्ति-प्रौढ़ता का भी संकेत करती हैं।

पंत की कविता का नवीनतम रूप उनकी "अतिमा" में दिखाई देता है। इसमें कहीं-कहीं दार्शनिक प्रवचनों का आधिक्य है, जिससे कविता किसी सीमा तक बोझिल बन गई है। लेकिन उनकी यह प्रवृत्ति उनके छायावाद के प्रति मोह की परिचायक कही जायगी। छायावादी काव्य-भाषा भी इसी प्रवृत्ति का प्रमाण है। एक उदाहरण देखिये—

रुके मूक भू मानस गह्वर, रुके स्तब्ध गिरि-कंदर
(शतियों के पुंजित तमिस्र से पीड़ित जिनका अंतर)
विध प्रतीक्षा में प्रसार होने को तुमसे दीपित
धूमिल क्षितिज, गरजता अंबर, उद्वेलित जन-सागर,
जड़ चेतन की दृष्टि निर्निमिष लगी ज्योतिशिखरों पर
मानवता का दिक् प्रशस्त उन्नयन तुम्हीं पर आश्रित।

लेकिन उपर्युक्त कथन का यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि "अतिमा" की सभी कवितायें इस बोझिलता से युक्त हैं, या कि उन सभी में छायावाद का बासीपन उभरा हुआ मिलता है। बल्कि सत्य यह है कि उसकी अनेक कवितायें छायावादी विशेषता से युक्त होती हुई भी अपने में एक प्रकार की ताज़गी-सी लिये हुये हैं–

कौन स्रोत ये,
श्रद्धा औ, विश्वास-रुपहले
राज मरालों के से जोड़े
तिरते सात्विक उर सरसी में
शुभ्र सुनहली ग्रीवा मोड़े,
शोभा की स्वर्गिक उड़ान से
भर जाता सहसा अपलक मन,
बजते नव छंदों के नूपुर
अलिखित गीतों के प्रिय पद बन।

यों कवि पंत की नयी कविता में बौद्धिकता का स्वर मुखरित है। साथ ही, उनकी उत्तरकालीन कवितायें प्रयोगात्मकता, प्रौढ़ता, सजीवता तथा निखार की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। दृष्टिकोण की नवीनता भी पंत की नयी कविता की एक विशेषता है। उपर्युक्त दृष्टि से "निकष" में प्रकाशित उनकी कविता का अवलोकन कीजिये––

एक टाँग पर उचक खड़ी हो
मुग्धा वय से अधिक बड़ी हो
पैर उठा, कृश पिंडुली पर धर
घुटना मोड़ चित्र बन सुंदर
उठ अंगूठे के बल ऊपर
उड़ने को अब छूने अंबर
सोनजुही की बेल हठीली
अटकी सधी अधर पर।

सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" को छायावाद के चार प्रमुख कवियों में माना जाता है। साथ ही, वह आधुनिक हिन्दी की नई कविता के प्रवर्तक-कवियों में हैं। आधुनिक हिन्दी कविता की नवीनतम प्रवृत्तियों—प्रगतिवाद और प्रयोगवाद—के बीज उनकी उस कविता में विद्यमान हैं, जो सन् १९२५ और ३० के बीच लिखी गई थी। उनकी कविता से हिन्दी की इन नयी कविता-धाराओं ने मार्ग ग्रहण किये। निराला को आधुनिक हिंदी कवियों में भाषा, भाव, छंद, अभिव्यंजना और प्रतीकों में सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय है। साथ ही, अब यह भी स्वीकार किया जाता है कि निराला जी के प्रयोग—मुक्त छंदों के क्षेत्र में—नयी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करने की क्षमता रखते हैं। इस मान्यता का आधार निराला का मुक्त छंद का बहुत सफल कवि होना है। उनकी कविताओं में ऐसे बहुत-से उदाहरण मिलते हैं, जो छंद की नवीनता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं, जैसे—

वह आता
दो टूक कलेजे को करता
पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को

भूख मिटाने को
वह फटी पुरानी
झोली को फैलाता
पछताता पथ पर आता ।

लेकिन निराला की छायावादी या रहस्यवादी कवितायें आध्यात्म के प्रभाव से रहित नहीं हैं, यद्यपि उनकी इस प्रकार की कविताओं में भी कवि की कोमल एवं मधुर भावनाओं का सर्वथा अभाव नहीं है—

यौवन के तीर पर प्रथम बार आया था जब
स्रोत सौंदर्य का
वीचियों में कल रव-सुख-चुंबित प्रणय का
था मधुर आकर्षणमय
मज्जनावेदन मृदु फूटता सागर में

*　　　*　　　*

सब कुछ तो था असार
अस्तु वह प्यार ?
सब चेतन जो देखता
स्पर्श में अनुभव-रोमांच
हर्ष रूप में—परिचय

*　　　*　　　*

खींचा उसी ने था हृदय यह
जड़ों में चेतन गति कर्षण मिलता कहाँ

कवि निराला की आस्था-भावना उनकी "परिमल," "अनामिका" तथा "तुलसीदास" आदि कृतियों में मिलती है। यों नये प्रयोगों की दृष्टि से, हमारी सम्मति में, "अर्चना" उनकी सबसे महत्वपूर्ण कृति है, जिसके गीत भाव, छंद और ध्वनि के क्षेत्रों में प्रयोग की दृष्टि से काफ़ी सफल हैं। गेयत्व

भी इसका विशिष्ट गुण है। "अर्चना" निराला के काव्य में एक नई कड़ी का सृजन करती है। गेयत्व की दृष्टि से एक उदाहरण देखिये—

गवना न करा।
खाली पैरों रास्ता न चला।
कँकरीली राहें न कटेंगी,
बेपर की बातें न पटेंगी,
काली मेघनियाँ न फटेंगी,
ऐसे-ऐसे तू डग न भरा।

इसके बहुत से गीत जन-गीतों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं। कुछ गीत ऐसे भी हैं, जो कवि के निराशावादी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं, जैसे—

ये दुख के दिन
काटे हैं जिसने
गिन-गिन कर
पल-छिन, तिन तिन
आँसू की लड़ के मोती के
हार पिरोये,
गले डालकर प्रियतम के
लखने को शशि-मुख
दुःख निशा में
उज्ज्वल अमलिन।

निराला के "कुकुरमुत्ता" का प्रकाशन १९४२ में हुआ था। निराला की इस काल की रचनाओं में यथार्थ का नग्न रूप सामने आता है। उनकी ये रचनायें इस बात का प्रमाण हैं कि वह छायावाद-युग की विद्रोह की भावना ही थी, जो पुरानी परंपराओं की सीमायें तोड़कर नये रूपों को ग्रहण करना चाहती थी। लेकिन निराला की ये रचनायें यथार्थ पर व्यंग्य के रूप में लिखी गयी थीं, वह उससे समझौता नहीं कर सकी थीं। उनकी

इस काल में लिखी गई रचनाओं में मानवतावाद के भी कुछ तत्व मिलते हैं। उनकी अनेक कविताओं में मानवतावादी दृष्टि-कोण स्पष्ट है। यों निराला के परवर्ती कवि उनकी कविता के जिस तत्व से विशेष रूप से प्रभावित हुये, वह थी—माध्यम के नये प्रयोग।

भगवतीचरण वर्मा की उत्तरकालीन कविताओं में उनका मानवतावादी दृष्टिकोण पुष्ट रूप में मिलता है—

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे
कुछ पाँच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़ों से
हैं उठे हुये कुछ कच्चे घर
पशु बनकर नर घिस रहे जहाँ
नारियाँ जन रही हैं गुलाम
पैदा होना फिर मर जाना
यह है लोगों का एक काम।

छायावादी कवियों में, अधिकांश के उनके रचनाकाल में ही आउट-आफ-डेट घोषित कर दिये जाने के मुख्य कारणों में एक यह भी है कि वे अपने उस कर्तव्य का पालन नहीं कर पाये, जिसके अनुसार उनके लिये यह आवश्यक था कि वे सामयिक और परिवर्तित जन-मनोवृत्तियों या पाठकों के टेस्ट से परिचय करने का प्रयत्न करते रहते और उसके अनुसार अपने साहित्य को विभिन्न मोड़ देने में सफल होते। यों, यह कहना कठिन है कि उनकी अनुभूतियों में अधिक गहराई, अधिक व्यापकता, या अधिक पकड़ और अधिक स्पष्टता नहीं है।

आज की हिन्दी कविता में छायावादी प्रवृत्ति अपने अवशेष रूप में मिलती है। जानकीवल्लभ शास्त्री, नरेन्द्र शर्मा तथा सुमित्राकुमारी सिन्हा का नाम उत्तरछायावाद युग के कवियों में उल्लेखनीय है। जानकीवल्लभ शास्त्री की कविता में छायावाद के

पूर्ण प्रभाव के साथ ही साथ नवीनता के तत्वों का समावेश भी है। उनकी कविता में यदि एक ओर नये युग की नयी समस्याओं के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण लक्षित होता है, तो दूसरी ओर शब्दावली, विषय, रहस्यात्मकता तथा काल्पनिकता की दृष्टि से रोमानियत भी। शास्त्री जी की कविता का क्रमिक विकास "काकली", "रूप-अरूप", "तीर तरंग", "शिप्रा", "मेघगीत" और "अवन्तिका" आदि काव्य-कृतियों में देखा जा सकता है। "काकली" स्वर-संधि की दृष्टि से, "रूप-अरूप" मूर्च्छना की दृष्टि से, "तीर तरंग" और "वासंती पतझड़" करुण-मधुर गायन की दृष्टि से, "शिप्रा" और "मेघगीत" गीतात्मकता की दृष्टि से तथा "अवन्तिका" प्रौढ़ काव्यत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। जानकी वल्लभ शास्त्री की कुछ कविताओं में सांस्कृतिक पक्ष की प्रधानता होने के कारण उनकी भाषा बोझिल और संस्कृत-गर्भित हो गयी है, जैसे—

राका - रजत - राजि - रजनी,
अशिथिल - निशीथ - मारुत - दोलित - दल,
गगन - सौध से मंद-मंद, मंथर-मारुत-मंथर-पद—
उतरी एक परी ज्योत्स्ना सी उन्मद।
शंकित-नयन, बंक-चितवन,
सर पद्म-सद्म, मधु-चंचल अंचल,—
उच्छ्वास-वासिता,
स्वर्ग-त्रासिता।

जानकीवल्लभ शास्त्री ने एक गीतकार के रूप में ही अधिक ख्याति—तथा सफलता भी—प्राप्त की है। उनके गीत छायावादी विचारधारा के अन्य कवियों के गीतों की विशेषताओं से युक्त होते हुये भी उनसे काफी भिन्नता रखते हैं। उनके गीतों में लय और संगीतात्मकता की दृष्टि से काफी नवीनता मिलती है। उनकी जिन कविताओं में सांस्कृतिक पक्ष की प्रबलता है, उनमें विषय

पुराना होते हुये भी नयापन होता है, जो नये युग का आभास देता है। कवि की इस प्रकार की रचनायें—"शकुंतला", "चाणक्य" तथा "अश्वत्थामा" आदि—अपेक्षाकृत अधिक लंबी हैं और इनमें से प्रत्येक भिन्न छंद और भिन्न शैली में लिखी गई है। उनकी प्रकृति-वर्णन-संबंधी कवितायें विशेष सुन्दर बन पड़ी हैं। उनमें कवि की संवेदना अधिक स्वाभाविक है और सौंदर्य-पक्ष की ओर किंचित् झुकी जान पड़ती है। कवि ने प्रकृति को अत्यंत सजीव और मोहक रूप में देखा है। कहीं-कहीं कवि ने अपनी अनुभूतियों को जो अभिव्यक्ति दी है, वह बहुत ही स्वाभाविक और सहज है। ऐसे स्थलों पर प्रायः भावों की स्पष्टता के साथ-साथ संगीतात्मकता भी आ गयी है। जहाँ तक हमारा विचार है, शास्त्री जी में, एक मिटती हुई काव्य-प्रवृत्ति के कवि होते हुये भी, एक नवीन दृष्टि है। उनकी कविता में मुख्यतया उन्हीं भावों की प्रधानता है, जो करुण तो हैं, लेकिन साथ ही मधुर भी हैं। उनके गीतों में इसी भाव को अपेक्षाकृत अधिक प्रश्रय दिया गया है, यद्यपि उनमें कहीं-कहीं काल्पनिकता भी आ गयी है तथा कुछ अन्य दोष भी हैं। उदाहरण के लिये निम्नलिखित कविता में अनुभूति की कमी स्पष्ट है—

कौन देगा साथ इस तूफान में ?

मैं चलूँगा सिर्फ चलने के लिये
मैं जलूँगा सिर्फ जलने के लिये
खाक मंजिल का पता मुझको नहीं
कौन देगा साथ इस अभियान में ?

कौन देगा साथ जलती आग में ?
कौन देगा साथ खूनी फाग में ?
याद है पीयूष पायी मित्र, पर—
कौन देगा साथ इस विषपान में ?

अब सुनी जाती नहीं बातें बहुत,
अब सही जाती नहीं घातें बहुत,
एक ही है सत्य, औ सब झूठ है,
कौन देगा साथ इस अभियान में ?

*　　　　*　　　　*

चल रहा हूँ मैं अँधेरी रात में,
जल रहा हूँ घोर झंझावात में,
आज दुर्दिन की भरी बरसात है,
कौन देगा साथ इस सुनसान में ?

रामेश्वर शुक्ल "अंचल" भी छायावाद के उत्तरकालीन कवि हैं। उनकी संवेदना रोमांटिक है। उनके कुछ गीतों में सौंदर्य-बोध की अभिव्यक्ति में काफी नवीनता है। उनके सन् ५५ में प्रकाशित एक गीत की कुछ पंक्तियाँ देखिये--

गीत का स्वर-भार परिणति लास जिसमें
यह तुम्हारा रूप सुख के संचरण-सा।
विगत सपने की अँधेरी रात मेरी
जो पुकारों से भरी पर शून्यता में जो घनेरी
है लिये नीरव उदार्घ जैसी निविड़ता
भीग जाती स्निग्धता से जब तुम्हारे रूप का वाताल चलता
यह तरंगित रूप वासंती पवन-सा।

अंचल की नवीनतम काव्य-कृति "वर्षांत के बादल" है, जो १९५४ में प्रकाशित हुई थी। चूँकि अंचल मूलतः यौवन, सौंदर्य और प्रेम के कवि हैं, अतः उनकी इस प्रकार के चित्रण-संबंधी कवितायें श्रेष्ठतर हैं। साथ ही, कहीं-कहीं प्रकृति-वर्णन-संबंधी चित्र भी अच्छे बन पड़े हैं। इस दृष्टि से "वर्षांत के बादल" में बहुत-से सुन्दर उदाहरण मिल जायेंगे। लेकिन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मुख्यतया एक गीतकार होने के कारण उनके प्रणय-गीत ही श्रेष्ठतर हैं। उनके गीतों में भावुकता का प्राधान्य है।

रोमांटिक भावनाओं से पूर्ण कविताओं की 'वर्षांत के बादल" में बहुलता है। लेकिन इसमें जो प्रकृति चित्रण-विषयक कवितायें हैं, वे काफी अच्छी हैं। इस दृष्टि से "वर्षांत के बादल" शीर्षक कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है--

जा रहे वर्षांत के बादल
हैं बिछुड़ते वर्ष-भर को नील जलनिधि से
स्निग्ध कज्जलिनी निशा की ऊर्म्मियों से
गगन की शृंगार सज्जित अप्सराओं से
जा रहे वर्षांत के बादल।
किस महावन को चले
अब न रुकते अब न रुकते ये गगनचारी
नींद आँखों में बसी गति में शिथिलता
किस गुफा में लीन होंगे
सांध्य-विहगों-से थके डैने लिये भारी
साथ इनके जा रहा
अगणित विरहिणी-विरहियों का दाह
दे रही अनिमेष नयनों से हरित वसुधा विदाई
किस सुदूर निभृत कुटी में पूजिता सुधि की इन्हें फिर याद आई
भर गई आ रिक्त कानों में
किस कमल वन में अनिद्रित शारदीया की करुण चंचल रुलाई
जा रहे आलोक पथ से मंद गति
वर्षांत के बादल।

"वर्षांत के बादल" की प्रकृति-वर्णन-संबंधी एक और कविता उदाहरण के लिये नीचे देखिये। शरद की निशा का अत्यंत मनोहारी वर्णन है, जिसकी फूटती हुई छवि में विरही को अपनी प्रिया की झलक दिखायी देती है। यह हिंदी की, इस विषय की सुन्दर कविताओं में एक है—

भूल गई पथ जैसे रुठा दिन को इस जीवन की हरियाली,
मूक हुई रोमों की भाषा रिक्त हो गई सुख की प्याली।

तुम न मिलो तो कौन कुमुद-कुंजों में मादक रूप सँवारे,
तुम न दिखो तो कौन चितवनों से खंजन की पाँत पुकारे।
कौन रचे मंजरियों से धानों की डाली।
किन केशों से गुथने को फूले शेफाली।
किस रंजित यौवन के दर्पण में अपना मुँह देखें तारे।
चंद्र मल्लिका किसके स्वागत में मोती की लड़ियाँ वारे।
मुझको लगता —
दूर कपूरी गिरि-शिखरों पर
तरल संगमर्मरी रूप के उन झरनों में,
तेरी छाया अकुलाती है—
शरद्-निशा में तेरी बड़ी याद आती है।

नरेंद्र शर्मा छायावाद के उत्तरकाल के रूमानी कवियों में हैं। उनकी बहुत-सी कविताओं में आध्यात्मिकता के संकेत भी मिलते हैं। इस प्रकार की कविताओं में कवि का व्यक्तित्व कुछ दबा-दबा-सा मालूम होता है और उनमें उपदेशात्मकता का स्वर भी मुखर हो गया है। यह प्रवृत्ति उनकी कविता के हल्केपन की द्योतक कही जायगी। "प्रवासी के गीत" में उनकी जो कवितायें हैं, वे रूप-विधान के क्षेत्र में नयेपन की परिचायिका हैं। नरेंद्र शर्मा मुख्यतः एक गीतकार हैं। उनकी कविता में भाषा तथा छंद आदि के क्षेत्र में नये प्रयोगों के उदाहरण भी मिलते हैं, जैसे—

तुम्हें याद है क्या उस दिन की
नये कोट के बटन-होल में
हँस कर प्रिये लगा दी थी जब
वह गुलाब की लाल कली।
फिर कुछ शरमाकर, साहस कर
बोली थीं तुम, इसको यों ही
खेल समझकर फेंक न देना
है यह प्रेम-भेंट पहली।

कुसुम कली वह कब की सूखी
फटा ट्वीड का नया कोट भी
किंतु बसी है सुरभि हृदय में
जो उस कविता से निकली।

लेकिन नरेंद्र शर्मा का "अग्नि शस्य" काव्य-संग्रह उनकी कविता की नयी दिशा का आभास देता है जिसमें उनके सन् १९४६ से ५० तक के गीत संगृहीत हैं। यद्यपि इस संग्रह में भी आध्यात्म-चिंतन विषयक रचनाओं की संख्या अधिक है, लेकिन जिन कविताओं में उन्होंने वर्तमान युग की समस्याओं की ओर संकेत किया है, वह काफी प्रभावशाली बन पड़ी हैं, जैसे—

जब से भावी महायुद्ध की खबर लगी है आने,
फिर लोभी के मनोगमन में गृद्ध लगे मँडराने।
सोच रहा है नफाखोर कब गोली गोला छूटें,
कब बरसें बम, कब बम के संग भाग्य अनेकों फूटें।
कब लालच की चीलें भू पर गोल बाँधकर टूटें,
कब वह जीतों को धोखा दें और मरों को लूटें।
फिर लोभी के मन को यों चितायें लगी सताने,
जब से भावी महायुद्ध की खबर लगी है आने।
फिर सोने का रंग मिलायेगा बनिया केसर में,
खूनी माणिक टँकवायेगा पूंजी के जेवर में,
फिर विष बुझी कटार छिपायेगा अपने तेवर में,
दुश्मन, दुश्मन चिल्लायेगा बैठा अपने घर में।
दुनियादार गँवार लगे फिर राग उसी का गाने,
जब से भावी महायुद्ध की खबर लगी है आने।

कहीं-कहीं इसमें प्रकृति-चित्रण भी बहुत स्वाभाविक रूप में उभरे हैं। उनमें हृदय की कोमलता के साथ ही प्राकृतिक दृश्यों का भोलापन भी लुभाता है। ग्राम की संध्या का एक लुभावना चित्र देखिये—

दूर-दूर कनक धूलि खुरों से उड़ाती हुई,
आती है साँझ कजरी गाय सी रँभाती हुई।
बछड़े सा बिछुड़ा था दिन भर जो ग्राम प्रांत,
श्याम धेनु संध्या के आते ही हुआ शांत।
हरती है श्रांति साँझ हृदय से लगाती हुई,
आती है साँझ कजरी गाय सी रँभाती हुई।

प्रणय-गीतों की गायिका सुमित्राकुमारी सिन्हा का नाम भी छायावादोत्तर युग के गीतकारों में उल्लेखनीय है। "विहाग", "आशापर्व" और "पंथिनी" के बाद उनके नये काव्य-संग्रह "बोलों के देवता" में उनके पिछले संग्रहों में अभिव्यक्त प्रेम-भावना ही अपने विकसित रूप में मिलती है। एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है---

तुम दाह घृणा का लेकर मन में बैठे हो,
खिल चटक चाँदनी रातें बीती जाती हैं।
चीनांशुक-पट से झाँक रही है प्रकृति-वधू,
कर्पूरी मुखड़ा फूलों की मुसिकान-भरा,
यह रूप-ज्योति तुम देख क्यों नहीं पाते हो?
आनंद-निमंत्रण प्राणों का कण-कण बिखरा,
तुम चिता के अंगार लिये क्यों बैठे हो?
साधों की मीठी घातें बीती जाती हैं।

हिंदी की नयी कविता का जन्म छायावादी काल्पनिक, रोमानी तथा पलायन-प्रवृत्ति के फलस्वरूप हुआ था। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर यह समझा जा सकता है कि हिंदी-साहित्य में कविता के क्षेत्र में जो नये-नये परिवर्तन हुए, वे विशेष रूप से छायावाद के परवर्ती काल में ही। इस काल में विविध साहित्यिक आंदोलनों की आड़ में हिंदी कविता को नित्य नये रूप देने का प्रयत्न किया गया। साथ ही, विभिन्न आंदोलनों के आधार पर ही नयी कविता का वर्गीकरण करने की चेष्टायें भी हुईं। हमारा अनु-

मान है कि अब तक शायद इस दृष्टि से स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया है, यद्यपि यह कहना असत्य होगा कि इस समय के बीच नयी कविता ने कोई प्रगति नहीं की है।

अब हम उन कवियों को ले रहे हैं, जो छायावादी काव्य-प्रवृत्ति से थोड़ी या बहुत असमानता रखते हैं। माखनलाल चतुर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा "नवीन" राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण कविता लिखने वालों में प्रमुख हैं। चतुर्वेदी जी की "हिम किरीटनी" सन् ४२ में प्रकाशित हुई थी, तथा "हिम तरंगिनी" ४९ में। इसके बाद सन् ५१ में उनकी "माता" नामक काव्य-कृति प्रकाशित हुई थी। इसकी कवितायें भी प्रायः स्वदेश-प्रेम संबंधी ही हैं, जैसे—

कविते ! क्या जाना अपना पथ शत-शत खो-खोकर पाना है।
सम्मानों से बच जाना है, अपमानों को अपनाना है।
उन प्रणाम-प्रलय के डोरों का ताना-बाना बुन लेना है।
प्राणों की रेखा, विधि-रेखा को अमर चुनौती देना है।
यह पथ कबीर के साहब का इस पर मीरा थी दीवानी !
आओ, सूझों के रथ बैठी मानव की कविता कल्याणी।

पंडित बालकृष्ण शर्मा "नवीन" ने अपने कविता-संग्रह "क्वासि" की भूमिका में कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं—"इस दर्शन-सिद्धांत पर जो भी साहित्य-कला-सौंदर्य-शास्त्र आधारित होगा, वह पूर्ण रूप से ग्राह्य नहीं हो सकता। इस प्रकार का शास्त्र, उस अंश तक, जिस तक वह अपने को यथार्थवादी दर्शन का अनुगामी बना लेता है, मानव-प्रकृति को रोकने वाला, अतः मानवोन्नति-बाधक, गति-अवरोधक, अचल तथा प्रतिक्रियावादी सिद्ध होगा। इस प्रकार के साहित्य-कला-सौंदर्य-शास्त्र में केवल उस सीमा तक गति होगी, जिस सीमा तक वह जीवन के तथ्य को स्पर्श, विकसित और प्रस्फुटित करेगा। किंतु जिस समय वह शास्त्र जीवन के तथ्य को केवल भौतिकता में बाँधने का दुराग्रह करने लगेगा, उसी

समय वह विचार-विकास-विरोधी के रूप में प्रकट हो जायगा।"

"क्वासि" की कविताओं में नवीन जी की नयी कविता-प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है और उनके आस्थावादी दृष्टिकोण का आभास देती है। इसकी कविताओं की शब्दावली रहस्यवादिता से पूर्ण है। एक उदाहरण देखिये—

स्वनित उड्डीयन-ध्वनित गति जनित-अनहद नाद से यह।
दिग्दिगन्ताकाश वक्षस्थल रहा है गूँज अहरह।
ऊर्ध्व गति ने ध्यानमग्ना गीत-मति को आन घेरा।
उड़ चला इस सांध्य नभ में मन-विहग तज निज बसेरा।

कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण कुछ कविताओं में प्रकट हुआ है, जैसे—

लपक चाटते जूठे पत्ते
जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ
आग आज इस दुनिया-भर को

लेकिन नवीन जी की बिल्कुल नयी कविताओं में वेदांतवादी स्वर की मुखरता दिखायी देती है। उदाहरण के लिये उनकी सन् ५५ की एक कविता का कुछ अंश देखिये—

तूने ही सब बंधन सिरजे हैं अपने से
ये होंगे भस्म मनुज, तेरे ही तपने से
बंधन हैं कहाँ ? अरे, तनिक जाग सपने से
तू तो है निर्विकार, विनिर्मुक्त, सत्य-संध
तू अबाध, यहाँ कहाँ मानव, तव चरण-बंध।

सन् १९३५ से ही प्रायः छायावादी कविता में ह्रास के लक्षण ढूँढे जाने लगे थे। नये कवि समाज के नवीन आदर्श से प्रेरणा पाकर अपनी कविता में प्रगतिशील भावनाओं का समावेश करने लगे थे। सन् १९३६ में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की भी स्थापना हो चुकी थी। रामधारी सिंह "दिनकर", डा०

शिवमंगल सिंह "सुमन", नागार्जुन, त्रिलोचन, रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नेमिचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे तथा शमशेरबहादुर सिंह आदि अन्य बहुत से कवि इस नयी विचारधारा से प्रभावित हुए थे।

रामधारी सिंह "दिनकर" के "इतिहास के आँसू" और "धूप और धुआँ" आदि संग्रह प्रयोगात्मकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। उनकी कुछ कविताओं में मानवतावादी दृष्टिकोण भी स्पष्ट है—

गिरे विभव का दर्प चूर्ण हो
लगे आग इस आडंबर में
वैभव के उच्चाभिमान में
अहंकार के उच्च शिखर में
स्वामिन् अंधड़ आग बुला दे
जले पाप जग का क्षण भर में

दिनकर की नयी कविता में इसी मानवतावाद की विकसित स्थापनायें मिलती हैं। उनके सन् १९५४ के लगभग प्रकाशित "नील कुसुम", "रेती के फूल", "रेणुका", "नीम के पत्ते" तथा "दिल्ली" आदि काव्य-संग्रहों में यह विशेषता देखी जा सकती है। इन कविता-पुस्तकों को देखकर दिनकर की कविता की भावी संभावनाओं का भी अनुमान लगाया जा सकता है। कवि का दृष्टिकोण प्रगतिशील है और यथार्थ के नये रूपों की विविधता का चित्रण उनकी कविता में हुआ है। इनकी कुछ कवितायें राजनैतिक भी हैं। ये संग्रह "दिनकर" की कविता के नये मोड़ का परिचय देते हैं। दिनकर का नया स्वर देखकर अनुमान हो सकता है कि उन्होंने युग की नयी दिशा को पहचाना है, जैसे—

लिख रहे गीत इस अंधकार में भी तुम
रवि से काले बरछे जब बरस रहे हैं,
सरितायें जम कर बर्फ हुई जाती हैं,
जब बहुत लोग पानी को तरस रहे हैं।

डा० शिवमंगल सिंह "सुमन" की प्रारंभिक कविताओं में प्रेम-भावना का प्राधान्य था। बाद में प्रगतिशीलता की लहर का प्रभाव उनकी कविता पर पड़ा और वह क्रांतिकारी कवि बन गये। उनकी इस प्रकार की कविताओं में विप्लव का आह्वान मिलता है और उसी भावना की प्रमुखता भी है। उनकी ये रचनायें राष्ट्रीय-प्रेम की कविता के अंतर्गत रखी जाती हैं। धीरे-धीरे कवि का झुकाव समाजवादी विचारधारा की ओर पाया जाने लगा और कवि उसी के रंग में रँगे गीत गाने लगा——जैसे——

बोले बच्चे आग्रो मिलकर
फिर वह गाना गाग्रो
दुनिया भर के मजलूमो ग्रब
आज एक हो जाग्रो।
हम मेहनतकश हमें कौन-सी
ताकत रोक सकेगी ?
अच्छा हुग्रा ढहे सब खंडहर
दुनिया नई बसेगी।
लाल निशान, लाल सैनिक
ग्राँखों में लाल सरूर है।
दस हफ्ते दस साल बन गये
मास्को अब भी दूर है।

लेकिन शिवमंगल सिंह 'सुमन' का नवीनतम काव्य-संग्रह "पर आँखें नहीं भरीं" उनकी कविता की इन प्रवृत्तियों से अलग भी कुछ विशेषताओं का परिचय देता है। उनकी इस संग्रह की रचनायें सामाजिक यथार्थ के धरातल पर आधारित होती हुई भी पूर्णत: सामाजिक यथार्थवादी नहीं कही जायेंगी। ये कवि द्वारा प्रस्तुत किये गये जीवन-दर्शन को स्पष्ट करती हैं। इनसे यह भी पता चलता है कि सुमन की कविता की अनुभूतियों ने जीवन के सत्य का उद्घाटन करने का प्रयत्न किया है। लेकिन दूसरी ओर

इस संग्रह में शब्द-संगीत अथवा चित्रात्मकता आदि की दृष्टि से कुछ कमियाँ भी मिलती हैं। कवि की लौकिक अतृप्ति मानसिकता का आवरण ओढ़े हुये कहीं-कहीं प्रकट हुई है, जैसे—

लजाओ मत इसी से
भक्त के भगवान् पलते हैं।
इसी के आसरे दिन-रात
सूरज - चाँद जलते हैं।
सितारे टिमटिमाते, और
झरने फूट पड़ते हैं,
निशा के गूढ़-गुम्फित केश
सहसा छूट पड़ते हैं।
जलन की साधना संसार में
सस्ती नहीं होती,
मधुर-मुस्कान की कीमत,
चुकाते आँख के मोती।
न जिसके आदि में है योग,
अथवा अन्त में बाकी,
तुम्हारे स्नेह की दो बूँद
जीने को बहुत काफी।

नागार्जुन का नया कविता-संग्रह "युगधारा" कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस संग्रह की कविताओं से यह आभासित होता है कि नागार्जुन की कविता में एक प्रकार की रूढ़िग्रस्तता-सी है, जिसके कारण उसकी स्वाभाविकता कम हो गई है। लेकिन इनकी सबसे बड़ी विशेषता इनकी मार्मिकता है। एक उदाहरण देखिये—

ऋतु वसंत का सुप्रभात था
मंद-मंद था अनिल बह रहा
बालारुण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णाभ शिखर थे

एक-दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती
निशा काल के चिर-अभिशापित
बेबस उन चकवा-चकवी का
बंद हुआ क्रंदन फिर उनमें
उस महान् सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय-कलह छिड़ने देखा है
बादल को घिरते देखा है।

यों नागार्जुन की कुछ कवितायें ग्रामीण दृष्टि और जनपदीय अथवा स्थानीय विशेषताओं की दृष्टि से अच्छी हैं, यथा—

याद आता मुझे अपना वह "तरउनी" ग्राम
याद आतीं लीचियाँ औ' आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनि और तालमखान
याद आते शस्य श्यामल जनपदों के
—रूप-गुण-अनुसार ही रखे गये वे नाम
याद आते वेणु-वन वे, नीलिमा के निलय अति अभिराम।

कवि त्रिलोचन की कवितायें "धरती" नामक संग्रह में मिलती हैं, जो सन् १९४५ में छपा था। इन कविताओं में सामाजिक चेतना का स्वर बोलता है तथा शुद्ध प्रकृति-चित्र भी मिलते हैं। इनमें कहीं-कहीं ग्राम-सौंदर्य का वर्णन करनेवाले गीत भी हैं, जिनमें गेयता के अतिरिक्त काफी ताजगी भी है। ग्राम-सौंदर्य का एक लुभावना चित्र देखिये—

सघन पीली
ऊर्मियों में

बोर
हरियाली सलोनी
झूमती सरसों
प्रकंपित वात से
अपरूप सुंदर
धूप सुंदर
धूप में
जगरूप सुंदर
सहज सुंदर ।

डा० रांगेय राघव की मुक्त छंद में लिखी गई रचनायें अच्छी हैं। उनकी कविता का गुण, प्रवृत्ति की दृष्टि से, यथार्थानुकारिता ही कहा जायगा। केदारनाथ अग्रवाल के कविता-संग्रहों में "युग की गंगा" और "नींद के बादल" उल्लेखनीय हैं। "नींद के बादल" की अधिकांश कवितायें छायावादी हैं और शेष यथार्थवादी। केदारनाथ अग्रवाल का नाम सामाजिक यथार्थ की प्रवृत्ति को अधिक मार्मिक बनाने वालों में उल्लेखनीय है। सन् ४५ के आस-पास लिखी गई उनकी कवितायें ग्रामीण जीवन के अधिक निकट हैं। तीखा व्यंग्य और ईमानदारी इनकी एक और विशेषता है। एक उदाहरण देखिये—

घन गरजे जन गरजे
बन्दी सागर को लख कातर
एक रोष से
घन गरजे जन गरजे।
क्षिति की छाती को लख जर्जर
एक शोध से
घन गरजे जन गरजे।

समाजवादी यथार्थ की प्रवृत्ति की मुख्यतावाले अन्य कवियों में रामविलास शर्मा, नेमिचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे, शमशेरबहादुर

सिंह तथा भारतभूषण अग्रवाल का नाम उल्लेखनीय है। रामविलास शर्मा की कविता का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है---

ईश के सुवर्ण सिंहासन के पार्श्व से
उड़ चले पुष्पक-विमान पृथिवी की ओर
करते हैं पुष्प-वृष्टि
नष्ट करते हैं नर-सृष्टि कर अग्नि-वृष्टि
दुर्दम नृशंस आततायियों के ध्वंसकारी वायुयान
हरे-हरे खेतों के
काले-काले लोहे के कल-कारखानों के
नीचे कहीं दबा था भूकंप एक चुपचाप
हड्डियों का ताप।

नेमिचंद्र जैन की कवितायें प्रायः रोमानी होती हैं, जिनमें व्यष्टि और समष्टि का अंतर्द्वंद्व झलकता है। उनकी सन् ५५ की एक कविता का कुछ अंश देखिये, जिसमें विघटित मूल्य-भावना का प्रतीकात्मक चित्र है---

देखता हूँ दशमी का पीला-सा चाँद
कहीं भागता
दीखता नहीं है मुझे
उसमें किसी का मुख खिलता, उत्फुल्ल
किसी मुग्ध भावना की मधु-आभा से दीप्त।
लगता है यक्ष्मा से पीड़ित निस्तेज
मुख कोई
मुझे घूरता है अपलक, निस्पंद ....

नेमिचंद्र जैन तथा गजानन माधव मुक्तिबोध ने कहीं-कहीं नयी परिस्थितियों से उत्पन्न मनःस्थितियों का अच्छा चित्रण किया है। यहाँ इन दोनों की कविता से एक-एक ऐसा उदाहरण दिया जा रहा है---

(१) आज उचटा-सा हृदय,
साइरन बज जाय उसके बाद

निर्जन शून्य सड़कों-सा निभृत, निस्संग, खाली
व्यर्थता की स्याह-सी बेमाप चादर से
अभी ज्यों ढक गया हो शून्य जी का प्रांत।

(२) वह परस्पर की मृदुल पहचान जैसे
अतल गर्भा भव्य धरती हृदय के निज कूल पर
मृदु स्पर्श कर पहचान करती, गूढ़तम उस विशद
दीर्घच्छाय श्यामल-काय बरगद वृक्ष की
जिसके तले आश्रित अनेकों प्राण
जिसके मूल पृथ्वी के हृदय में टहल आये, उलझ आये।

गजानन माधव मुक्तिबोध की बहुत-सी कवितायें व्यक्ति-प्रधान हैं, जिनमें समाजवादी यथार्थ की प्रवृत्ति स्पष्ट है, जैसे--

तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे ह्रास में भी रोग-कृमि में उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र
मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धो चले अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।

इसी प्रवृत्ति के कवियों में प्रभाकर माचवे भी हैं, जिनकी कविताओं में प्रायः निम्न मध्य वर्ग का चित्रण काफी सफल हुआ है, जैसे--

नोन तेल लकड़ी की फिक्र में लगे घुन-से
मकड़ी के जाले-से, कोल्हू के बैल से,
मकां नहीं रहने को, फिर भी ये घुन से
गन्दे, अँधियारे और बदबू भरे दड़बों में
जनते हैं बच्चे।
बीसवीं सदी ने हमें क्या दिया

मोटर, रेल, विमान, क्रांतियाँ
यह बेतार, सवाक् चित्रपट
कागज मुद्रा, आर्थिक संकट
गति अतिशयता, वेगातुरता
कहीं प्रपीड़न, कहीं प्रचुरता।
बीसवीं सदी ने यही दिया
मानव को मानव का भक्षण
मानव को निज संरक्षण का
परवाना सबको बाँध दिया
जीवन-संघर्ष बढ़ा यां तक
उस हाथ दिया इस हाथ लिया
देखा न पुण्य अथवा पातक
जिसने मारा बस वही जिया।

भारतभूषण अग्रवाल भी समाजवादी यथार्थ की प्रवृत्ति के कवियों में आते हैं। इनकी कुछ कविताओं में रोमानियत की भावनायें भी मिलती हैं, जिनमें सामाजिक यथार्थ का समन्वय होता है। यों ताजगी की दृष्टि से भी इनकी कुछ कवितायें विशेष उल्लेखनीय हैं, जैसे—

किस सम्मोहन से आज प्राण मेरे
कर उठते हैं गुन-गुन
किस सुख का मधु संकेत लिये
री, बौराया है यह फागुन
सुन, कोयल ने संदेश दिया
आता ही होगा अब पाहुन।

"छवि के बंधन", "जागते रहो" तथा "मुक्ति-मार्ग" उनकी काव्य-रचनायें हैं, जिनमें उनकी कविता के विभिन्न मोड़ लक्षित होते हैं। इनमें से अंतिम संग्रह की रचनायें विशेष प्रौढ़ता लिये हुए हैं, और उसमें कवि का विश्वासी स्वर मुखर हुआ है—

आज ही मैं जान पाया हूँ
कि केवल मैं अकेला ही नहीं हूँ दुखी चिंताग्रस्त
वरन् आज समस्त जीवन-स्रोत
रुद्ध हो इस विषम बाधा से विकल है फूटने
पथ खोजने के लिये
व्यस्त हैं गंभीर जीवन-मरण के संग्राम में,
मुक्ति के इस मार्ग में हम तुम अकेले ही नहीं हैं,
हैं हमारे साथ लाखों, करोड़ों, अरबों, असंख्य
स्वदेश और विदेश के भाई.......

हिन्दी में छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया-स्वरूप जिन नयी काव्यधाराओं ने जन्म लिया है, उनमें सबसे नयी दिशा उस कविता की है, जिसे "प्रयोगवादी" कहा जाता है। प्रयोगवाद के विषय में जो मुख्य धारणा उसके विरोधी मत वाले आलोचकों ने बना ली है, वह यह है कि उसमें अभिव्यक्त व्यक्तिवादी भावनायें ही केंद्रगत हैं, जिनकी अभिव्यक्ति विभिन्न क्षेत्रीय मान्यताओं के रूप में होती है। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिये कि रूपवाद या "फार्मलिज्म" प्रयोगवाद का पर्याय नहीं है, बल्कि एक प्रकार से उसकी एक शाखा ही है।

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रगतिशील कविता प्रयोगशील के मुकाबले में यथार्थवादिता के भीतर रहकर संकीर्ण होती गयी।

नयी कविता में, जिससे प्रायः प्रयोगशील कविता से ही तात्पर्य समझा जाता है, प्रायः कुछ विशेष प्रवृत्तियों की ही प्रमुखता देखी जाती है। कुछ में नये सामाजिक यथार्थ को ग्रहण करने का आग्रह रहता है, तथा कुछ में विभिन्न परिस्थितियों के फलस्वरूप जीवन से विरक्ति या निराशा। अन्य में इसी पृष्ठभूमि पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से विचार और अनास्था का प्राबल्य रहता है। सामाजिक चेतना इन सबमें मिलती है। कुछ कवियों की रचनायें ऐसी भी

हैं, जो इनमें से किसी के भी अंतर्गत नहीं आतीं। वे प्रायः रोमानियत लिये हुये गीतों की ही सृष्टि करते हैं।

प्रयोगवाद के अन्यतम कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय" का नाम जागरूकता की दृष्टि से नई पीढ़ी के कवियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उनके पाँच काव्य-संग्रह "भग्नदूत", "चिंता", "इत्यलम्", "हरी घास पर क्षण भर" तथा "बावरा अहेरी" प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी प्रारंभिक कविताओं में प्रायः प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से कई विशेषतायें मिलती हैं। "तारसप्तक" में संगृहीत अज्ञेय की रचनायें व्यक्तिवादी विद्रोह के अहं की भावना पर आधारित हैं, जैसे--

नूतन प्रचंडतर स्वर से
आततायी आज तुमको पुकार रहा मैं
रणोद्यत दुर्निवार ललकार रहा है
कौन हूँ मैं ?
तेरा दीन, दुखी, पद-दलित, पराजित
आज जो कि क्रुद्ध सर्प से अतीत को जगा
मैं से हम हो गया ?
मैं ही हूँ वह पदाक्रांत रिरियाता कुत्ता
मैं ही हूँ वह मीनार-शिखर का प्रार्थी मुल्ला
मैं वह छप्पर तल का अहं-लीन शिशु भिक्षुक।

"तार सप्तक" में अज्ञेय की कुछ कवितायें यौन-प्रतीक और सौंदर्य-बोध की दृष्टि से भी उल्लेखनीय हैं--

चरण पर धर
सिहरते,से चरण
आज भी मैं इस सुनहले मार्ग पर
पकड़ लेने को पदों से
मृदुल तेरे पद-युगल के अरुण तल की
छाप वह मृदुतर

जिसे क्षण-भर पूर्व ही निज
लोचनों की उघरती-सी बेकली से
मैं चुका हूँ चूम वारंबार।

"हरी घास पर क्षण भर" में कहीं-कहीं मनोभावों का चित्रण बहुत सफलता से हुआ है। उदाहरण के लिये देखिये--

आह—
भूल मुझसे हुई—मेरा जागता है ज्ञान,
किन्तु यह जो गाँठ है साझी हमारी,
खोल सकता हूँ अकेला
    कौन से अभिमान के बल पर ?
    —हाँ, तुम्हारे चेतना-तल पर
तैर आये अगर मेरा ध्यान,
और हो अम्लान
    (चेतना के सलिल से धुल कर)
तो वही हो क्षमा की बेला—
अनाहत संवेदना ही में तुम्हारी
    लीन हो परिताप, छूटे शाप,
मुक्ति की बेला—
    मिटे अन्तर्दाह।

इस संग्रह में अज्ञेय की कुछ हलकी-फुलकी कवितायें भी मिलती हैं जैसे--

अल्ला रे अल्ला
होता न मनुष्य मैं, होता करमकल्ला।
रूखे कर्म जीवन से उलझता न पल्ला।
चाहता न नाम कुछ
मांगता न दाम कुछ
करता न काम कुछ, बैठता निठल्ला—
अल्ला रे अल्ला।

अज्ञेय जी की कुछ कवितायें मुक्त छंद की दृष्टि से काफी कमजोर हैं। "इत्यलम्" तथा "बावरा अहेरी" से ऐसा एक-एक उदाहरण देखिये——

(१) मेरा ध्यान
धुंधला-सा पड़ता हुआ,
गया
मैदान के किनारे वाली पटरी के उस मौलसिरी के
गाध की ओर
जिसके नीचे की खुड्ढी घास में बैठ कर
एक दिन दो आने की विलायती मलाई की बर्फ
खाई थी।

(२) यह वह विश्वास नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा,
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँधुआते कड़वे तम में
यह सदा-द्रवित, चिर-जागरूक, अनुरक्त-नेत्र,
उल्लम्ब-बाहु, यह चिर-अखंड अपनापा।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय
इसको भक्ति को दे दो :
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

"बावरा अहेरी" अज्ञेय का नवीनतम काव्य-संग्रह है। इसमें उनकी सन् ५० से ५३ तक की कवितायें संगृहीत हैं। गीतात्मकता की दृष्टि से यह अज्ञेय के काव्य की नयी कड़ी कहा जा सकता है। इसकी बहुत-सी कवितायें नवीन छंद और पद योजना की दृष्टि से काफी सफल हैं। इस संग्रह की कविताओं के विषय में यह कहा जायगा कि इनमें कवि अपनी काव्यानुभूतियों को अधिक सफलतापूर्वक आँक सका है और उनमें अभिव्यक्ति की नवीनता तथा निखार भी ला सका है। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा——

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जल को
बांध लेता है सभी को साथ :

संगीतात्मकता की दृष्टि से भी इसकी अनेक कवितायें अच्छी बनी हैं। इस दृष्टि से "चाँदनी जी लो" शीर्षक कविता का कुछ अंश देखिये—

शरद चांदनी
बरसी
अँजुरी भर कर पी लो
ऊँघ रहे हैं तारे
सिहरी सरसी
ओ प्रिय कुमुद ताकते
अनझिप
क्षण में
तुम भी जी लो।

इसी संग्रह की एक और उल्लेखनीय कविता का उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

ऊपर फैला है आकाश, भरा तारों से—
भार-मुक्त से तिर जाते हैं
पंछी
डैने बिना हिलाये।
जी होता है मैं सहसा गा उठूँ
उमगते
स्वर का जो कभी नहीं भीतर से फूटे
कभी नहीं जो मैंने—
कहीं किसी ने—गाये।
किंतु अधूरा है आकाश

हवा के स्वर बंदी हैं
मैं धरती से बँधा हुआ हूँ—
हूँ ही नहीं, प्रतिध्वनि भर हूँ
जब तक
नहीं उमगते तुम स्वर में मेरे प्राण स्वर।

हमारा अनुमान है कि कलात्मक सौंदर्य और माधुर्य की संपन्नता के बावजूद, "बावरा अहेरी" की कवितायें "हरी घास पर क्षण भर" की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ नहीं हैं, यद्यपि यह कहना गलत होगा कि उनमें कलात्मक-प्रौढ़ता की कमी है। इसकी कुछ कवितायें कवि की विशिष्ट मनःस्थिति का भी परिचय देती हैं, जैसे—

आज तुम शब्द न दो, न दो
कल भी मैं कहूँगा।

....

गति जहाँ सब कुछ है, तुम धृति पारमिता
जीवन के सहज छन्द
तुम्हें पहचानता हूँ
माँगो तुम चाहे जो : माँगोगे, दूँगा
तुम दोगे सो सहूँगा।

कहीं-कहीं यह भी आभासित होता है, जैसे कवि के सामने अभिव्यक्ति की समस्या भी रही है। वह अनुभव करता है कि—

है, अभी कुछ और है, जो कहा नहीं गया।

....

उस विशाल में मुझसे
बहा नहीं गया।
इसलिये जो और रहा, वह
कहा नहीं गया।
शब्द, यह सही है, सब व्यर्थ हैं,
पर इसीलिये कि शब्दातीत कुछ अर्थ हैं।

अज्ञेय की कुछ नवीनतम कविताओं में कवि के अनास्था से आस्था की ओर बढ़ने का संकेत मिलता है और विचारों की तीव्रता भी लक्षित होती है, उदाहरण के लिये उनकी सन् ५५ की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिये--

तुम तुम हो, मैं—क्या हूँ ?
ऊँची उड़ान, छोटे कृतित्व की लंबी परंपरा हूँ ।
पर कवि हूँ—स्रष्टा, द्रष्टा, दाता
जो पाता
हूँ, अपने को मिट्टी कर उसे गलाता-चमकाता हूँ ।
पुष्प-सा, सलिल-सा, प्रसाद-सा,
कंचन-सा, शस्य-सा, पुण्य-सा,
अनिर्वच आल्हाद-सा लुटाता हूँ
क्योंकि तुम हो ।

इधर अज्ञेय की जो फुटकर कवितायें प्रकाशित हुई हैं, उनमें से कुछ में गद्यात्मकता अधिक है । यों उनकी कुछ नयी कवितायें तीखे व्यंग्य से युक्त होने के साथ-साथ काफी सशक्त बन पड़ी हैं । इस दृष्टि से उनकी "निकष" में प्रकाशित "साँप" शीर्षक कविता देखिये--

साँप तुम सभ्य तो हुये नहीं, न होगे,
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूं (उत्तर दोगे)
फिर कैसे सीखा डसना,
विष कहाँ पाया ?

सन् ५६ में प्रकाशित अज्ञेय की एक और कविता का उदाहरण यहाँ दिया जाता है, जो सादगी और गीतात्मकता की दृष्टि से सुन्दर है---

सुख मिला ।
उसे हम कह न सके ।

दुख हुआ :
उसे हम सह न सके ।
संस्पर्श बृहत् का उतरा सुर-सरी-सा :
हम बह न सके ।
यों बीत गया सब : हम मरे नहीं, पर हाय । कदाचित्
जीवित भी हम रह न सके ।

एक वाक्य में कहा जायगा कि पिछले दस वर्षों में अज्ञेय के काव्य में अधिक सूक्ष्मता और गूढ़ता आयी है ।

कवि गिरिजाकुमार माथुर ने प्रारंभ में भाषा, शैली, छंद तथा भाव आदि के क्षेत्र में नये प्रयोग किये थे। इस काल में हिन्दी कविता यथार्थ के धरातल पर उतरने लगी थी, यद्यपि वह रूमानियत मिश्रित थी—जैसे पंत या नरेंद्र शर्मा की उत्तरकालीन कवितायें । माथुर की उस समय की कवितायें मुक्त छंद, प्रतीक और उपमानों के नये प्रयोग की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। "मंजीर" की एक कविता का उदाहरण देखिये—

अब तो तुम्हारी सुधि
मुझको हुई है हिमालय की लकीर-सी
उस दिन की बात जब
उछले थे धीमे ही
चलने से रेती में
चंचल चुपचाप चरण
मिट ही चुके हैं वे बिखरे निशान
किंतु
संस्मृति के सूने कठोर शिला-खंड पर
वज्र बन धँसे हैं वे तेरे इस्पात-चिह्न
मानों पत्थर भी गल के मोम बन गया था तब
और सूख जाने पर
जैसे के तैसे निशान बने रहे प्राण ।

हमारा विचार है कि माथुर की कविताओं में प्रयोगवादी

विशेषताओं के साथ कुछ अन्य गुण भी हैं, जो अन्य प्रयोगवादी कवियों से उनकी एक प्रकार से असमानता सिद्ध करते हैं। उनके प्रथम काव्य-संग्रह "मंजीर" में अनेक नये प्रयोग मिलते हैं, जो उनकी कविता के यथार्थ की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति के परिचायक हैं। लेकिन इससे पहले की लिखी हुई उनकी कविताओं पर छायावादी प्रभाव स्पष्ट है। इस संग्रह की कुछ कवितायें नये उपमानों और यथार्थवादिता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं, जैसे—

गंगा के रेत भरे मरु से किनारे पर,
हम तुम मिले थे उस सूनी दुपहरी में,
शिशिर क्षणों की उस मीठी दुपहरी में।
यौवन के भाग्य से
जीवन के अभाग्य से।
तुम थीं छिपाये हुये मोह भरी माया एक
उस श्याम जादू की काली-सी छाया एक
अपने भोलेपन में।
तुम थीं अजान बड़ी—
सब कुछ समझती थीं फिर भी अजान थीं।
सुंदर दुरावमयी,
तुम बड़ी भोली हो।

* * *

पहिले मैं देवता था
अब मैं पुजारी हूँ
इतना पतन आज
अब तुम बनी हो सुंदरता की पूज्य-देवि
पूजते हैं तुमको हम प्राणों में बिठला के
एक दिन वह था जब
तुम बनी पागल थीं मेरा प्रेम पाने को
प्यार तो हमारे इस रूप-पूर्णिमा से सखि,
मुझको है प्रेम खूब
जिसको मैं एक दिन ध्यान में न लाता था।

"नाश और निर्माण" गिरिजाकुमार का दूसरा संग्रह है, जो सन् ४६ में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह की अधिकांश कवितायें मुक्त छंद की दिशा में नया प्रयोग हैं। कुछ कविताओं में कवि ने सवैये को तोड़कर एक नये छंद का निर्माण किया है। इस संग्रह की "उजियाला" शीर्षक कविता भी उल्लेखनीय है। यह "लिरिक" का एक नया प्रयोग है, जिसमें परंपरागत व्यंजन-तुकांतों के बदले स्वर-ध्वनियों के माध्यम से तुकांत (वॉवल राइम) प्रस्तुत किये गये हैं—

लो ये उजयाले के घेरे फिर आसमान की ओर चले।
छै वर्षों पहले आई थी
काली तूफानी एक रात,
रक्तिम पुच्छल तारा डूबा
ज्यों शाम-मृत्यु का उठता फासफोरसी हाथ
निज इस्पाती बाँहें पसार
फैल गई युग के पृष्ठों को
काली स्याही से रँगती
छै वर्षों की वह एक रात।

कवि माथुर का नवीनतम काव्य-संग्रह "धूप के धान" है। इसमें उन्होंने कई नये छंदों का प्रयोग किया है। इसकी "शाम की धूप" तथा "चाँदनी गरबा" आदि कवितायें उपमान, भाषा, छंद, लय तथा संगीतात्मकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। शब्द-शिल्प की दृष्टि से "हेमंती पूनो" शीर्षक कविता सुन्दर है—

चाँद हेमंती
हवा बहुत कटीली
चाँदनी फैली हुई है
ओस नीली।
चाँदनी डूबी हवा सुधि-गंध लाती
याद के हिम वक्ष से आँचल उड़ाता

चाँद के जब गोल बीसों आइनों में
मोम की सित मूर्ति-सी गत आयु आती।

सामाजिक यथार्थ के शिल्प के प्रयोग की दृष्टि से इस संग्रह की "ढाकवनी" तथा "देह की आवाज" शीर्षक कवितायें उल्लेखनीय हैं। गीतात्मकता की दृष्टि से "पंद्रह अगस्त", नये छंदों के प्रयोग की दृष्टि से "नये साल की सांझ", आधुनिक वस्तु-प्रतीकों के उपयोग की दृष्टि से "न्यूयार्क में फ़ाल" तथा वस्तु और शिल्प की दृष्टि से "याज्ञवल्क्य और गार्गी", "चंदरिमा", "सिंधु तट की रात" तथा "तेंतीसवीं वर्षगांठ" आदि कवितायें उल्लेखनीय हैं।

गिरिजाकुमार माथुर की कविता में उपर्युक्त विशेषताओं के समान ही कुछ कमियाँ भी स्पष्ट हैं। उनकी छंदबद्ध कवितायें अपेक्षाकृत अधिक लम्बी हैं, इसलिये उनमें अनुभूति की व्यापकता के बावजूद चुस्ती की कमी है और उनका प्रभाव भी कम हो गया है। उनके काव्य-संग्रहों की एक कमी यह भी है कि वे उनकी प्रकाशित-अप्रकाशित कविताओं के मात्र संकलन मालूम होते हैं और कवि द्वारा प्रस्तुत जीवन-दर्शन को स्पष्ट करने में समर्थ नहीं हो पाते।

"यथार्थ और कल्पना" तथा "युग दीप" के रचयिता उदयशंकर भट्ट का दृष्टिकोण मानवतावादी रहा है। उनकी आस्था नये जीवन पर है। उसी नये जीवन के नये समाज की कल्पना कवि ने की है—

जहाँ एक ही जाति होगी धरा पर
जहाँ एक नर पाँति होगी धरा पर
जहाँ संघ में प्राण अनुरक्ति होगी
वहाँ प्रेम होगा, वहीं शक्ति होगी,
वहाँ स्वर्ग होगा, मनुज के हृदय में—
किसी दिन कभी तो पहुँच जायेंगे ही—
प्रलय में, तिमिर में, न तूफान में भी,
कदम ये रुके हैं, न रुक पायेंगे ही।

बालकृष्ण राव की कवितायें "रातबीती" नामक संग्रह में मिलती है। यथार्थ की तीव्र चेतना और अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस संग्रह की कवितायें महत्वपूर्ण हैं, यद्यपि कहीं-कहीं ऐसा आभासित होता है कि कवि अपनी अनुभूतियों को समेट या संगठित नहीं कर पाया। एक उदाहरण देखिये—

डूबता है चाँद, तारे मुँह छिपाते,
काँपते हारे, थके, सहमे हुये-से—
क्योंकि अब सूरज निकलने जा रहा है।

कवि ने अपनी कविताओं में शिल्प की अपेक्षा संक्षिप्तता को अधिक महत्व दिया है। बालकृष्ण राव की सन् ५५ की एक कविता देखिये, जिसमें अनास्था का उद्वेगरहित चित्रात्मक अंकन हुआ है—

दीप जलाये थे आस्था ने राह दिखाने,
किन्तु अपेक्षा थी ईश्वर को अंधकार की,
उठकर जिसके गुहागर्भ से गूंज रही थी
शंका और निराशा की आवाज युगों से
जलकर दीपक धर्म, ज्ञान के दिखा रहे थे
कितनी सीधी पर कितनी सूनी थी राहें,
करते आये थे आलोकित जिन्हें रात भर।
इन दीपों की ज्योति, पूर्व नभ की लाली सी,
दिन चढ़ते ही मिटी—मार्ग अब भी हैं सूने,
गूंज रही आवाज़ आज भी अविश्वास की।
कहीं कुतूहल के क्षितिजों पर बैठे होंगे
अनपूछे प्रश्नों के उत्तर बाट जोहते।

सन् ५६ में प्रकाशित बालकृष्ण राव की एक अन्य सुन्दर कविता का उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

गीत जब पहले पहल गाया गया था
बुद्धि के हर मोड़ पर भूला भटकता,
झाड़ियों में दार्शनिकता की अटकता,

मुक्त हो संदेश उस दिन आदमी का,
आदमी के पास पहुँचाया गया था।

डा० देवराज के कविता-संग्रह "जीवन रश्मि" और "धरती और स्वर्ग" हैं। "धरती और स्वर्ग" में उनकी स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की कवितायें संगृहीत हैं। इस संग्रह की कविताओं में अधिक कलात्मकता नहीं है। कवि की मनोवृत्ति में आधुनिकता भी कम है। उसकी रोमांटिक-भावना में मध्यकालीन तथा आधुनिक प्रेम-भावनाओं की छाया मिलती है, जैसे—

में समझता था प्रिये यों ही कपोलों में रहेगी
कांति विमलोज्ज्वल
और अधरों में मधुर मुस्कान प्राणों की उषा-सी
स्नेह की संबल,
और यों ही रूपजल में लहरती अलकें तुम्हारी
रहेंगी निश दिन,
और यों ही स्पर्श में भरती रहेंगी बिजलियाँ
उल्लसित कंपन,
में समझता था...... . मगर कैसा विवर्तन
शून्य-सा आनन तुम्हारा शीत-से, परिरम्भ-चुम्बन।

इस संग्रह की जिन कविताओं में कवि का ध्यान किन्हीं आधुनिक समस्याओं की ओर गया जान पड़ता है, वे अपेक्षाकृत अधिक सशक्त बन पड़ी हैं। साथ ही, उनसे इस बात का भी आभास मिलता है कि कवि ने मानव-जीवन के भिन्न पहलुओं को गहराई तक देखा है। यों, कवि की उर्दू शैली में लिखी गयी रचनायें, जैसे रुबाइयाँ आदि हलकी-फुलकी, व्यंग्यपूर्ण तथा रोचक हैं—

धरती पै स्वर्ग लाने वाले हैं,
जन को व्यथा मिटाने वाले हैं,
दो बूंद नहीं आंखों में पानी,

मरु को चमन बनाने वाले हैं।
वक्ता हैं मगर सत्य से अपरिचित,
नेता हैं मगर राह से अपरिचित,
करते हैं ज़माने की मसीहाई
दुखियों के मगर दर्द से अपरिचित।
पद-शक्ति को ज्यों जोंक पकड़ते हैं,
हर अपने विरोधी पै अकड़ते हैं,
हिम्मत है किसे उनकी करे समता,
समता के लिये जन की वो लड़ते हैं।

कहीं-कहीं संस्कृत शैली के समास-गर्भित पद भी मिलते हैं जिनसे भाषा में बोझिलता आ गई है, लेकिन दृष्टिकोण की नवीनता उसमें अवश्य मिलती है, जैसे—

चारु फुलवारी में क्षिप्र गति संचरण
करती कुसुम गात फूलों का संचयन,
रस-लुब्ध भौरों को फिर-फिर हेरती,
हँसती, दशन-ज्योति दिशि-दिशि बिखेरती,
दामिनी-सी सहसा घन-पट पै उतरती
भूतल की उर्वशी।

डा० जगदीश गुप्त का कविता-संग्रह "नाँव के पाँव" है। इसमें दो खंड हैं—नाव के पाँव तथा टूटती लहरें। इसकी अधिकांश कवितायें गीतात्मकता लिये हुये हैं और गीत-शैली में ही लिखी गई हैं। जगदीश गुप्त पर छायावाद युग के तथा छायावादोत्तर काल के गीतकारों का प्रभाव मिलता है। उन्होंने पुराने माध्यमों से नयी अभिव्यक्ति को काफी सशक्त ढंग से सामने रखा है—

रच दिया पथ ज्योति के आवर्तनों से चाँद ने
रात की वेणी किरण की उँगलियों से खोलकर
बाँध अपने को लिया अनगिन घनों से चाँद ने।

याद है वह नींबुओं की सांवली छाया घनी ?
ओस की सुकुमार बूंदों से भरी पलकें उठा,
आसमानी चाँद से कहती कपूरी चाँदनी।

कहीं-कहीं कवि की काव्यात्मक संवेदनायें बहुत गहन हो गयी प्रतीत होती हैं, लेकिन जब-जब उनमें कवि कल्पना-चित्रों का मोह छोड़कर यथार्थ के धरातल पर उतर आता है, तब-तब उसकी अभिव्यक्ति अधिक सशक्त रूप में प्रकट होती हैं, जैसे—

मैं बिखर गया हूँ
अपने ही चारों ओर।
मेरा एक अंश—सामने के नीम की
नंगी टहनियों में लगी उदास पीली
पत्तियों के बीच उलझ गया है—
और उन्हीं के साथ
पतझर के रूखे किंतु खुमारी भरे
झोंकों की चोट से—एक-एक कर
नाचता-गिरता-लहरता-थिरता
जटाओं-जैसी भूरी सूखी धूल भरी घास पर
उतर रहा है—उतर रहा है।

... ...

मुझे कौन पूरा करे,
पीली पत्तियों को फैलते जल-वृत्तों में कौन बांधे
बह जायेंगी वे।
काले दागों पर बहके सफेद बादलों को कौन साधे,
ढक जायगा चांद, खो जायँगी चीलें।

अनुभूति की नवीनता और ताजगी की दृष्टि से इस संग्रह की कुछ कवितायें काफी अच्छी हैं। कहीं-कहीं चित्रण बहुत मनोरम हुआ है, जैसे—

झुटपुटे में साँझ के चूनर पहन,
किसी नतशिर नव वधू ने

अरुण मेंहदी रचे हाथों से जला--
नील यमुना की लहरियों पर
पात में रख—मौन, घी के दीप तैराये।

लेकिन इन विशेषताओं के बावजूद इस संग्रह की कुछ कवितायें काफी हल्की मालूम होती हैं। कहीं-कहीं कवि अपनी अभिव्यक्ति को सफलतापूर्वक नहीं प्रकट कर पाया है, और रचनायें प्रभावरहित हो गयी हैं। एक उदाहरण देखिये---

माना हमारे स्नेह में कोई कमी होगी नहीं,
माना हमारे दीप की कम रोशनी होगी नहीं,
लेकिन किसी भी रोशनी को बाँध लेना पाप है,
अपने हृदय का स्नेह दुनिया को न देना पाप है,
जो धूलि कण आये हमारी राह में सोना बने,
अपना पराया अब न हो कोई हमारे सामने,
तुमने दिया सर्वस्व मुझसे भी जरा-सा दान लो
इस सत्य को मैं चाहता हूँ, आज तुम भी मान लो,
मानो न मानो तुम सही,
पर सोचता हूँ मैं यही,
ये जिंदगी के रास्ते,
सारी धरा के वास्ते।

"नवीना" के रचयिता गंगाप्रसाद पांडेय की कविता में कोमल, मधुर प्रकृति के सहज सौंदर्य का स्वाभाविक चित्रण मिलता है। ऐसे प्रकृति चित्रों में ही कवि को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है। इन प्रकृति-चित्रों में एक विशेषता यह भी है कि वे काफी नवीन रूप में मिलते हैं, जैसे---

ये भरे बादल,
भरी आँखों में जैसे हो लगा काजल।
झनन झनकारें,
गूंजते हों दूर जैसे पुलक पायल।

और यह शुभ रूप,
जैसे प्राण पोषक धूप जाड़े की ।

कहीं-कहीं ग्रामीण प्रयोग भी मिलते हैं--

अदरा के बदरा घहराये
भर बदरा इठलाता,
बिना तुम्हारे मेरा चातक
चित, पल चैन न पाता ।

अब हम दूसरे सप्तक के कवियों पर एक दृष्टि डालेंगे, जो सन् १९५१ में प्रकाशित हुआ था । "तार सप्तक" और "दूसरा सप्तक" का प्रकाशन हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण घटना माना जाता है ।

भवानीप्रसाद मिश्र की कवितायें सहज अभिव्यक्ति और सफलता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कवि का गाँधीवाद में विश्वास है । मिश्र जी की भाषा साधारण बोलचाल की तथा शैली तीखी और व्यंगपूर्ण है । उनकी "गीत फरोश" कविता का कुछ अंश देखिये--

जी हाँ हुजूर, गीत बेचता हूँ ।
मैं तरह-तरह के
गीत बेचता हूँ,
मैं सभी किसिम के गीत बेचता हूँ ।
जी माल देखिये दाम बताऊँगा,
बेकाम नहीं हैं, काम बताऊँगा,
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने,
यह गीत सख्त सरदर्द बुलायगा,
यह गीत पिया को पास बुलायगा ।
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको,
जी, लोगों ने तो बेच दिया ईमान ।

जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान।
मैं सोच-समझ कर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ,
जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ।

शकुंत माथुर की कविता की विशेषतायें हैं सादगी और रागात्मकता। उदाहरण के लिये "जान बूझकर नहीं जानती" शीर्षक कविता देखिये—

आज मुझे लगता संसार खुशी में डूबा
क्यों ?
जान बूझकर नहीं जानती।
आज मुझे लगता संसार खुशी में डूबा—
माँ ने पाया अपना धन ज्यों,
बहुत दिनों का खोया,
बहुत बड़ी क्वारी लड़की को सुघर मिला
हो दूल्हा,
मैल-भरी दीवारों पर राजों ने फेरा हो चूना,
किसी भिखारिन के घर में, बहुत दिनों के
पीछे, मन्द जला हो चूल्हा।
बूढ़े की काया में फिर से एक बार
यौवन हो कूदा।
पकड़ गया था चोर अकेले कूचे में जो
किसी तरह वह कारागृह से छूट गया हो,
या कि अचानक किसी वियोगिनि का पति
लौटा
उसी तरह
आज मुझे लगता संसार खुशी में डूबा
क्यों ?
जान बूझकर
नहीं जानती।

हरिनारायण व्यास की कविता में कल्पना का आधिक्य है। उनकी प्रकृति-चित्रण संबंधी कवितायें विशेष सशक्त और प्रवाहपूर्ण बनी हैं, जैसे--

उधर उस नीम की कलगी पकड़ने को
झुके बादल।
नयी रंगत सुहानी चढ़ रही है
सबके माथे पर।
उड़ें बगुले, चले सारस,
हरस छाया किसानों में।
बरस भर की नयी उम्मीद
छायी है बरसने के तरानों में।
बरस जा रे, बरस जा ओ नयी दुनिया के
सुख सम्बल।

हरिनारायण व्यास की कविता में कहीं-कहीं आस्थावादी स्वर दृढ़ हो गया है, और संदेहहीनता की भावना लक्षित होती है--

इस पुरानी जिंदगी की जेल में
जन्म लेता है नया मन
... ...
जल रहीं प्राचीनतायें बाँध छाती पर मरण का एक क्षण
इस अँधेरे की पुरानी ओढ़नी को छोड़कर
आ रही ऊपर नये युग की किरण।

शमशेरबहादुर सिंह की कविता में उर्दू-शैली और लोक-संगीत का प्रभाव यत्र-तत्र मिलता है। उनकी कविता में अभिव्यक्ति का उलझापन हर जगह खटकता है। इसी कारण उसकी सरलता भी अपेक्षाकृत कम हो गई है। उदाहरण के लिये "मैं सुहाग हूँ" शीर्षक गीत देखिये---

धरो शिर
हृदय पर
क्षण-वह्नि से - तुम्हें

मैं सुहाग दूँ—
चिर सुहाग दूँ।
प्रेम अग्नि से - तुम्हें
मैं सुहाग दूँ।
विकल मुकुल तुम,
प्राणमयि
यौवनमयि
चिर वसन्त स्वप्नमयि
मैं सुहाग दूँ।
विरह-आग से - तुम्हें
मैं सुहाग दूँ।

नरेश मेहता स्वच्छंदतावादी कवि हैं। आलंकारिकता और चमत्कार इनकी कविता के गुण हैं। इनकी कविता की मुख्य कमी अनुभूति की एकांगिता है, जिसके कारण उसकी अभिव्यक्ति में सशक्तता नहीं आ पाती। यों उसमें कहीं-कहीं सौंदर्य के रहस्यमय संकेत मिलते हैं, और रोमांटिक संवेदना में अस्तित्ववादी पुट भी—

ऋतु-अभिषेक सिर पर झेलते
भाल पर संकोच रेखा
विवशतायें कंठ में
अगागत यात्रा सम्मुख तवे-सी जल रही
हम आयु के अश्वत्थ
अपनी छाँह भी स्वीकार जिनको है नहीं।

नरेश मेहता की कविता में कहीं-कहीं यांत्रिक युग में मानव-व्यक्तित्व के विघटन के भी संकेत मिलते हैं—

जिंदगी
दो उँगलियों में दबी,
सस्ती सिगरेट के जलते टुकड़े की तरह,
जिसे कुछ लमहों में पीकर
गल्ली में फेंक दूँगा।

रघुवीर सहाय की अभिव्यक्ति में सुलझाव कम है। चित्रात्मकता की दृष्टि से इनकी कुछ कवितायें अच्छी बनी हैं। गद्यात्मकता की प्रवृत्ति भी उसमें बहुलता से मिलती हैं। यों इनकी भाषा सरल और चमत्कार युक्त है। इनकी कविता में कहीं-कहीं मानसिक अंतर्द्वंद्व की सूक्ष्म विवेचना लक्षित होती है। इनके कुछ गीतों में रोमांटिकता का स्वर तीव्र है, जैसे—

मुक्ति के सारे नियंत्रण तोड़ डाले,
मुक्ति के कारण नियम सब छोड़ डाले,
अब तुम्हारे बन्धनों की कामना है।
विरह यामिनी में न पल भर नींद आयी,
क्यों मिलन के प्रात वह नैनों समायी,
एक क्षण ही तो मिलन में जागना है।
यह अभागा प्यार ही यदि है भुलाना,
तो विरह के वह कठिन क्षण भूल जाना
हाय, जिनका भूलना मुझको मना है।
मुक्त हो उच्छ्वास अम्बर मापता है,
तारकों के पास जा कुछ काँपता है,
श्वास के हर कम्प में कुछ याचना है।

रघुवीर सहाय की कुछ कविताओं में आशावादी स्वर की मुखरता दिखाई देती है, जैसे—

मैं, तुम, यह, वह,
मन के चारों कोने
और व्यक्ति की यह सीमायें
कब टूटेंगी ?
जब तुम होगी मुझसे दूर
यह भी अपना
वह भी अपना
होगा

बना सकता हूँ।
यह विराट् चक्रव्यूह—
उस इकलौते भाई की नूतन पाठशाला है।
और मैं उसका अकेला अध्यापक हूँ।
लेकिन मैं झूठ नहीं बोलता—
सच,
मेरा बाप अर्जुन नहीं था
मेरी माँ सुभद्रा नहीं थी
और मैं भी अभिमन्यु नहीं हूँ।

इन्हीं कवियों के साथ कुँवरनारायण का नाम भी लिया जाना चाहिये। उनकी कविताओं का एक संग्रह अभी "चक्रव्यूह" के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की एक कविता का उदाहरण देखिये। इसमें परिष्कृत पीड़ा का सूक्ष्म संकेत मिलता है—

पागल-से लुटे लुटे,
जीवन से छुटे छुटे,
ऊपर से सटे सटे
अन्दर से हटे हटे,
कुछ ऐसे भी यह दुनिया जानी जाती है।
अपनी ही रची सृष्टि
अपनी ही ब्रह्म दृष्टि
ऊपर से रचे रचे
अन्दर से बचे बचे
कुछ ऐसे भी यह दुनिया जानी जाती है।
स्वयं बिना नपे तुले,
कण कण से मिले जुले
ऊपर से ठगे ठगे
अंदर से जगे जगे
कुछ ऐसे भी दुनिया अनुमानी जाती है।

कुँवरनारायण की कविता में कहीं-कहीं गद्यात्मकता की

प्रवृत्ति भी बहुलता से मिलती है। जहाँ-जहाँ यह दोष पाया जाता है, वहाँ पर अपेक्षाकृत उसका प्रभाव कम हो गया है और अभिव्यक्ति में दुरूहता आ गयी है। भाव भी अस्पष्ट हो गये हैं। ऐसे स्थलों पर एक विचित्र-सा उलझाव मिलता है, जिसका अर्थ समझ में नहीं आता। एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

चाँदनी सित रात चितकबरी,
उसे भूखंड की गंजी सतह पर
खोह से खंडहर
कपालों में धँसा ज्यों रेंगता मनहूस अँधियारा।
अचानक चौंक कर बुत छाँव में
दो पंख फड़के,
ज्यों किसी स्मृति ने कंगूरों पर खड़े हो
दूर की मेहराब में घुसती हुयी
प्रेतात्माओं को पुकारा :
"प्यार की अतृप्त, खंडित आत्मा,
अश्वस्त हो......
वह दर्द जीवित है तुम्हारा।"

उपर्युक्त काव्य-प्रवृत्ति से अलग हिन्दी में ऐसे अन्य बहुत से कवि हैं, जो गीति-परंपरा में आते हैं। बच्चन का नाम इन कवियों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "सोपान", "निशा निमंत्रण", "एकांत संगीत", "आकुल अंतर", "सतरंगिनी" तथा "प्रणय पत्रिका" आदि उनके बहुत से गीत-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वह एक समय हिंदी के बहुत लोकप्रिय कवियों में रहे हैं। उनकी कविता की प्रमुख विशेषता उनकी भाषा का सरल तथा बोलचाल की भाषा के निकट होना है। बच्चन के अनेक गीतों में मरण-भावना की प्रबलता लक्षित होती है, उदाहरण के लिये एक गीत यहाँ दिया जा रहा है—

बीत चली संध्या की बेला ।
धुंधली प्रति पल पड़ने वाली
एक रेख में सिमटी लाली
कहती है, समाप्त होना है सतरंगे बादल का मेला
बीत चली संध्या की बेला ।
नभ में कुछ द्युति हीन सितारे
माँग रहे हैं हाथ पसारे—
रजनी आये, रवि किरणों से हमने है दिन भर दुख झेला ।
बीत चली संध्या की बेला ।
अंतरिक्ष में आकुल-आतुर
कभी इधर उड़, कभी उधर उड़ ।
पंथ नीड़ का खोज रहा है पिछड़ा पंछी एक अकेला ।
बीत चली संख्या की बेला ।

"निशा निमंत्रण" तथा "एकांत संगीत" के बाद बच्चन की कविता का पहले की धारा के समान विकास नहीं हुआ । "आकुल अंतर" और "सतरंगिनी" उनके पहले के संग्रहों से भिन्न प्रतीत होते हैं । "प्रणय पत्रिका" में जिस प्रौढ़ता की आशा कवि से की जानी चाहिये, वह उसमें नहीं मिलती ।

विद्यावती कोकिल के गीत "सुहागिन" में संगृहीत हैं। इसके गीतों में उनकी सुहाग की अचल और अमर भावना प्रकट होती है । "नीरज" के गीत "विभावरी में मिलते हैं । इसके अधिकांश गीत निराशावादी हैं । इनमें कवि ने जीवन को एक विवशता सिद्ध करते हुये संसार की प्रत्येक वस्तु के नाशवान होने की बात कही है । उनका इस संग्रह में व्यक्त दृष्टिकोण कम नया कहा जायगा । हाँ, ओजपूर्ण भाषा की दृष्टि से इसके सभी गीत अच्छे हैं, जो नीरज की सबसे बड़ी विशेषता है ।

डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल "तरुण" के गीत "प्रथम किरण" तथा "हिमांचला" आदि में संगृहीत हैं । तरुण जी की

शैली बहुत स्वाभाविक और सरल है। इनके प्रकृति-गीतों में विशेष मधुरता मिलती है। इनके कुछ गीतों में सामाजिक यथार्थ की ओर भी संकेत मिलता है। कहीं-कहीं कवि को बहुत ही मनोरम और मार्मिक चित्रण में सफलता मिली है। एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है--

चढ़ा ओढ़नी जल में उतरी अब घुटनों तक
रखा घड़ा पानी पर दो पल, जल हिलराया छल्-छल् छल्छल्
भर कर घड़ा उठाया भरी झूम उठी यौवन में सारी
काया गदरारी गदरारी, काढ़ तनिक-सा घूँघट
सिर पर रख घट, पगडंडी पकड़ी निज संकरी
जाती झटपट, लहराती लट, फहराती पट
मादक गति से और पवन से पड़ते हैं साड़ी में सलपट।

श्रीपाल सिंह "क्षेम" के गीत "जीवन तरी" तथा "नीलम, ज्योति और संघर्ष" में संगृहीत हैं। क्षेम की अनुभूति में काफी नवीनता, सूक्ष्मता और गहराई मिलती है। इनकी कविता में कहीं-कहीं ग्राम्य-चित्र अच्छे मिलते हैं, जैसे--

धीरे-धीरे सीरे पवन ने उभार दी
किरनों के पलने पर झूल रही शारदी।
चरनों पर जूड़ हुयी सूरज की ताब है
तलवों में सपनाया गंगा का ढाब है।
बाहों में डूब गया दिन-कंवलों का सौरभ,
केशों में डूब गया साँझ का गुलाब है।
बिंदिया-सा लहक रहा है चन्दा पारदी,
किरनों के झूले पर झूल रही शारदी।
पछुवा पर खनक रहीं धानों की आलियाँ,
बजती हैं नरम-नरम पीपल की तालियां।
जोन्हाँ के गीतों में डूबी-डूबी अरहर,
आँचल में मुरक रहीं बजरे की बालियाँ
शरमीले नयनों को शबनम ने धार दी।
किरनों के पलने पर झूल रही शारदी।

मैं अपने वश में होऊँगा
तब तथास्तु।

दूसरे सप्तक के एक महत्वपूर्ण कवि धर्मवीर भारती हैं। उनकी प्रारंभिक कविताओं में रोमानियत के साथ सामाजिक चेतना की अनुभूति मिलती है। इस दृष्टि से देखने पर उन पर समकालीन गीतकारों का प्रभाव भी मिल जायगा। एक उदाहरण देखिये--

तुम कितनी सुंदर लगती हो, जब तुम हो जाती हो उदास।
ज्यों किसी ग़ुलाबी दुनिया में, सूने खंडहर के आसपास
मदभरी चाँदनी जगती हो।
मुँह पर ढक लेती हो आँचल
ज्यों डूब रहे रवि पर बादल।
या दिन भर उड़कर थकी किरन,
सो जाती हो पाँखें समेट, आँचल में अलस उदासी बन,
दो भूले-भटके सांध्य विहग
पुतली में कर लेते निवास।

तुम कितनी सुंदर लगती हो, जब तुम हो जाती हो उदास।

धर्मवीर भारती के कुछ गीत ताजगी की दृष्टि से अच्छे हैं। उन पर उर्दू काव्य-शैली प्रभाव मिलता है। उनकी कुछ कविताओं में यथार्थ की कटु अनुभूति मिलती है--

हर घर में सिर्फ चिराग़ नहीं, चूल्हे सुलगे
लेकिन फिर भी
जाने कैसा सुनसान अँधेरा
रह-रहकर धुँधुआता है
छप्पर से छनता हुआ धुआँ
हर ओर
हवा की पर्तों पर छा जाता है
बढ़ जाती है तकलीफ साँस तक लेने में
हर घर में मचता हंगामा

दफ्तर के थके हुये क्लर्कों की डाँट-डपट
बच्चों की चीख-पुकारें
पत्नी की भुनभुन ।

पिछले वर्ष धर्मवीर भारती का "अंधा युग" नामक दृश्य-काव्य प्रकाशित हुआ था। इसकी कथावस्तु महाभारत के अठारहवें दिन से लेकर कृष्ण की मृत्यु तक की है। इस काव्य में सबसे महत्वपूर्ण और सशक्त चरित्र अश्वत्थामा का है, वह कहता है--

सुनते हो पिता
मैं इस प्रतिहिंसा में
बिल्कुल अकेला मैं
तुमको मारा धृष्टद्युम्न ने अधर्म से
भीम ने दुर्योधन को मारा अधर्म से ।
दुनिया की सारी मर्यादा बुद्धि
केवल इस निपट अनाथ अश्वत्थामा पर ही
लादी जाती है ।

कृष्ण की मृत्यु पर अश्वत्थामा कहता है--

वह था मेरा शत्रु
पर उसने मेरी पीड़ा भी धारण कर ली
जख्म हैं बदन पर मेरे
लेकिन पीड़ा सब शांत हो गई बिल्कुल
मैं हूँ दंडित लेकिन मुक्त हूँ ।

"अंधायुग" की मुख्य कमी यह बताई जा सकती है कि इसमें किसी भी ऐसे महान् चरित्र की सृष्टि नहीं हो सकी है, जो आस्था का प्रतीक हो। लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि अश्वत्थामा आदि पात्रों के द्वारा इस दिशा में कवि ने प्रयत्न अवश्य किया था। यों यह पिछले दशक के महत्वपूर्ण काव्य-प्रयत्नों में एक कहा जायगा ।

इस कृति की मुख्य समस्या यह कही जा सकती है--

ऐसे भयानक युद्ध को
अर्ध सत्य, रक्त हिंसा से जीतकर
अपने को बिल्कुल हारा हुआ अनुभव करना
यह भी यातना ही है।

'अंधा युग" में कहीं-कहीं गद्यात्मकता बहुत है। इसी कारण उसमें थोड़ी प्रभावहीनता भी आ गयी है। जैसे--

कृपाचार्य : संजय
तुम्हें ज्ञात है
कहाँ हैं वे ?
सजय : (धीमें में)
वे हैं सरोवर में
माया से बाँध कर
सरोवर का जल
वे निश्चय अंदर बैठे हैं
ज्ञात नहीं है
यह पांडव दल को।

कवि विजयदेवनारायण साही की कवितायें भाषा की सरलता और संगठन की चुस्ती की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। एक उदाहरण देखिये--

छोर से उमड़ी घटा गिरि घाटियों में कस गयी
पत्थरों के बीच सोंधी बास आकर बस गयी
भोर से ही जा रही हैं यह हवायें बावली।
रस्सियों की गाँठ-सा जैसे बँधा मन खुल गया
मस्तियों-सा खो गया मैं गूंज-सा मैं घुल गया
स्वरों की बेसुध स्वरों की दोपहर यह साँवली।

साही की कुछ कविताओं में विश्वास और अनास्था का अंतर्द्वंद्व भी मिलता है, जैसे--

सच मानो प्रिय
इन आघातों से टूट-टूट कर रोने में कुछ शर्म नहीं

कितने कमरों में बंद हिमालय रोते हैं,
मेजों से लग कर सो जाते कितने पठार,
कितने सूरज गल रहे अँधेरे में छिपकर,
हर आँसू कायरता की खीझ नहीं होता।

वीरेंद्रकुमार जैन की कविता में लोक-भावना का पुट भी कहीं-कहीं मिलता है। इस दृष्टि से तथा रहस्यमयता और चमत्कार की दृष्टि से लोकगीत से मिलती-जुलती रोमानियत उनकी निम्न-लिखित कविता में मिलती है---

टल गयी प्रदोष बेला
वन-पथ खो गये अँधेरे में।
दूर के घाटी वाले तम छाये वन पर
एक अकेली तारिका झिलमिल रोती-सी
लगती थी वन में खोई एकाकिनि बाला-सी।
हाँ, उस बाट की फूटी दरगाह में
वह सांई रहता है चिमटे वाला......
हाय, वह तो नहीं आई :
वह गयी है फूल बीनने
संध्या के मंडप-घर की दीवारों पर माँडने के लिये।

श्रीराम वर्मा की गत वर्ष प्रकाशित "चक्रव्यूह" शीर्षक कविता भी उदाहरण के लिये नीचे दी जा रही है। इसमें मानवीय संवेद-नाओं के बीच दृढ़ आस्था का स्वर स्पष्ट है। पुराने प्रतीक के नये रूप इसमें मिलते हैं। गद्यात्मकता अवश्य खटक सकती है—

मेरी आत्मा—
अर्जुन से भी अधिक ऋजु है,
सुभद्रा से भी अधिक धारणाशीला है,
और अभिमन्यु से भी अधिक श्रुतिधर्मा है।
क्योंकि मैं वर्तमान को अपना छोटा भाई मानता हूँ।
जिसे मैं जिधर चाहूँ मोड़ सकता हूँ।
और उसे अपने प्यार के सहारे दिव्य और भव्य

शंभूनाथ सिंह के गीत "दिवालोक" में संगृहीत हैं। इनके गीतों की विशेषता नये उपमानों का प्रयोग है। इस संग्रह के कुछ गीतों में विषाद का मार्मिक चित्रण है। कवि इस भावना से इतना आक्रांत हो उठता है कि जीवन-मरण दोनों उसके लिये समान स्वीकार्य हो जाते हैं, एक उदाहरण देखिये--

तुम पुकारो पार से जब
स्वर सुनूं स्वरकार के जब
मैं तुम्हारा प्यार ले तब
प्रिय तुम्हारे चरण पर मर
भी सकूं चुपचाप,
प्रिय, मैं जी सकूं चुपचाप।

लेकिन "दिवालोक" के ये विषादयुक्त गीत अंत में आस्थायुक्त स्वर में बदल गये हैं--

... ... हम अनश्वर
शक्ति के हैं केंद्र जीवन के प्रणेता।
क्षुद्र तिनके काल-धारा के विजेता
अब बनेंगे, एक-एक नहीं सहस्र शत
एक होकर। आत्म-मुक्ति समष्टि-चेता
व्यक्ति होगा, काल के रथ पर चढ़ेगा।
प्राणवंत, नई दिशाओं में बढ़ेगा।

छंद-रचना में नयापन और ताजगी की दृष्टि से एक उदाहरण देखिये--

मेरे अंतर में तपती जो प्यास
अनाहत अनचाही और अनायास
यदि वह तुम हो, मेरी प्राण।
तो मैं धन्य, धन्य मेरे गान।

"दिवालोक" को शंभूनाथ सिंह के काव्य-विकास का संतोष-जनक प्रयास कहा जा सकता है, जिसके गीतों में भाषा, प्रतीक और प्रयोग के नये धरातल प्रस्फुटित हुये हैं।

रमानाथ अवस्थी के गीत "आग और पराग" में संगृहीत हैं। इनके गीतों में प्रणय-भावना की ही प्रधानता है। इनकी विशेषता गेयत्व और मधुरता है। एक गीत देखिये--

सो न सका कल याद तुम्हारी आई सारी रात
और पास ही बजी कहीं शहनाई सारी रात
मेरे बहुत चाहने पर भी नींद न मुझ तक आई
ज़हर भरी जादूगरनी सी मुझको लगी जुन्हाई
मेरा मस्तक सहलाकर बोली मुझसे पुरवाई—
दूर कहीं दो आँखें भर-भर आईं सारी रात
और पास ही बजी कहीं शहनाई सारी रात।

उपर्युक्त प्रवृत्ति में जो अन्य गीतकार आते हैं, उनमें शांति मेहरोत्रा तथा हंसकुमार तिवारी आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

नयी कविता में कथातत्व की अप्रधानता रही है। सोमेश्वर सिंह कृत "शाहजादा खुसरो", "भारतीनंदन" कृत "पार्वती" तथा धर्मवीर भारती कृत "अंधा युग" इस कमी को अंशतः पूरा करते हैं।

नयी कविता में बढ़ती हुई गद्यात्मकता की प्रवृत्ति उसके भावी रूप का कुछ आभास देती है। यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यह प्रवृत्ति नयी कविता की एक विशेषता सी बनती जा रही है। कुछ लोग ऐसी गद्य-प्रधान कविता को मुक्त छंद के अंतर्गत रखते हैं, लेकिन यह ठीक नहीं है। अंग्रेजी में मुक्त छंद उस छंद को कहा जाता है जिसमें संगीत और लय को विशेष महत्व दिया गया हो। जिस छंद में अर्ध विराम या पूर्ण विराम आदि पर जोर दिया गया हो उसे ब्लैंक वर्स कहा जाता है। किंतु हिंदी में ऐसा नहीं होता। यहाँ एक प्रकार से मुक्त छंद के अंतर्गत तीन प्रकार के छंदों का प्रयोग होता है--

--वे कवितायें जो वास्तव में छंद से मुक्त (फ्री वर्स) होती हैं, प्रथम के अंतर्गत आती हैं।

—वे कवितायें जो "ब्लैंक वर्स" (मुक्त छंद) में होती हैं, द्वितीय के अंतर्गत आती हैं।

—वे कवितायें जो इन दोनों में से किसी के अंतर्गत नहीं आतीं, अर्थात् न वे "ब्लैंक वर्स" में आती हैं और न "फ्री वर्स" में। वे इन दोनों से अलग एक तीसरी कोटि की होती हैं और उनमें गद्यात्मकता भी अपेक्षाकृत अधिक होती है।

नयी कविता में कुछ अन्य दोष भी पाये जाते हैं, जिनकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इधर कुछ समय से नयी कविता में जिस प्रवृत्ति की बहुलता दिखाई देती है, वह है नवीनता के नाम पर चौंकाने या आकर्षित करने की प्रवृत्ति। नये तरीके से अभिव्यक्ति के नमूने के तौर पर प्रायः कविताओं में बहुत भद्दे एक्सप्रेशन देखने में आते हैं। इसका कारण नये कवियों की अप्रौढ़ता तथा अनुशासनहीनता हो सकता है। इसीलिये वह जो कुछ कहना चाहते हैं, यह पाठकों की समझ में नहीं आता। और जो कुछ पाठक उनसे आशा करते हैं, वह कह नहीं पाते। अतः पाठकों को बहुधा उनकी कविता महज बकवास मालूम होती है, ओर उसमें उन्हें एक प्रकार की झुँझलाहट पैदा करनेवाली बहक सी नजर आती है। साथ ही, वह उसके रचयिताओं के मन में भरे हुये कुहासे का भी आभास देती है। उन्हें कवियों द्वारा प्रस्तुत जीवन-दर्शन की संभावनाओं में संदेह होने लगता है। इस प्रकार पाठक और कवि के बीच में एक तरह की खाई सी बनी हुई है। आज के कवि इन दोषों से बचने का और पाठक के अधिक निकट आने का प्रयत्न करें, तो अच्छा है। गुटबंदी, या साहित्यिक वादों की सीमायें भी आज एक समस्या बनी हुई हैं। कोई साहित्यकार मौलिक रूप से चिंतन करने की आवश्यकता का कम अनुभव करता है। पूर्व-स्थापित या चलताऊ मान्यतायें काफी सीमा तक उसे मार्ग-भ्रष्ट कर रही हैं।

हिंदी कविता का नवीन दिशा-निर्माण अब इस बात पर

निर्भर है कि अब उसके सही मूल्यांकन के लिये क्या प्रयत्न किये जाते हैं। अब इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि किंचित् ऊँचे मान से समसामयिक साहित्य का मूल्यांकन करके श्रेष्ठ साहित्य सृजन को प्रोत्साहन दिया जाय। हमारा विचार है कि अब इस बात की खोजबीन की अधिक आवश्यकता है कि खरे-खोटे को छाँटा और अलग किया जाय। साथ ही, अब तक की अपनी महत्व-पूर्ण उपलब्धियों का लेखा-जोखा बनाया जाय और उसका संयोजन किया जाय। इस प्रकार से जिस मार्ग का निर्देशन होगा, उसके द्वारा निश्चय ही, हिंदी कविता आगे बढ़ सकेगी।

हिन्दी उपन्यास

साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा उपन्यास नवीनतर रूप है। यह साहित्यांग सदैव से विकासशील रहा है। यह कहना गलत होगा कि हिंदी उपन्यास अभी अपनी अपरिपक्वावस्था में है या विषय-वस्तु, भाषा अथवा कथा-शिल्प की दृष्टि से अप्रौढ़ है।

आधुनिक युग में उपन्यास केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं रह गया है। वह मानव की जीवन-कथा को व्यक्त करनेवाला एक महत्वपूर्ण माध्यम है। उसे जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को संपूर्णता से चित्रित कर सकना चाहिये। उसमें जीवन की अनेक समस्याओं की अभिव्यक्ति औचित्यपूर्ण ढंग से उपस्थित होनी चाहिये—केवल मानसिक विकृतियों के चित्र खींचना ही उपन्यास का लक्ष्य नहीं है।

लेकिन हिन्दी उपन्यास की नवीनतम प्रतिभाओं के कृतित्व के आधार पर कोई बात कहने के पूर्व हम बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक पचास वर्षों के हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास-क्रम की रेखा को स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि हमारा विचार है कि उसकी पृष्ठभूमि में हमारा यह अध्ययन अधिक पूर्ण हो सकने की संभावना है।

हिन्दी उपन्यास का जन्म बहुत थोड़े ही समय पूर्व हुआ था। परन्तु इसी अल्प काल के बीच उसने जो आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है, वह उसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता और साहित्य के क्षेत्र में

उसके महत्व की परिचायक है। नाटक तथा कहानी की ही भाँति, यदि स्थूल रूप से देखा जाय तो, उपन्यास का प्रारंभ भी, हिंदी साहित्य में, भारतेंदु के समय से हुआ, यद्यपि उस युग से पहले भी कुछ ऐसी कृतियाँ मिलती हैं, जिन्हें उपन्यास की संज्ञा दी जाती है और उसके अंतर्गत रखा जाता है। लेकिन हमारी सम्मति में वे इस योग्य नहीं हैं, और न ही वे साहित्यिकता अथवा कलात्मकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। उनका महत्व, अगर कोई है तो, बस इतना ही कि वे हिंदी उपन्यास की परंपरा की कड़ियाँ हैं और उसके प्रारंभिक रूप का आभास देती हैं। इस प्रकार की कृतियों में इंशाल्ला खाँ लिखित "रानी केतकी कहानी" तथा सदल मिश्र कृत "नासिकेतोपाख्यान" का नाम उल्लेखनीय है, यद्यपि हिन्दी उपन्यास का आधार अथवा प्रेरणा-स्रोत "बैताला पचीसी", "माधवानल कामकंदला", "शकुंतला", "सिंहासन बत्तीसी", "किस्सा तोता मैना", "किस्सा साढ़े तीन यार", "गोरा बादल की कथा" तथा 'राजा भोज का सपना" आदि कथा-साहित्य की रचनायें थीं।

तो, भारतेंदु काल से ही वास्तविक रूप में हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ माना जाता है। यों, भारतेंदु काल में भी उपन्यास कम ही लिखे गये। "पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा" (भारतेंदु हरिश्चन्द), "परीक्षागुरु" (श्रीनिवास दास), "नूतन ब्रह्मचारी" तथा "सौ अजा एक सुजान" (बालकृष्ण भट्ट), "निस्सहाय हिन्दू" (राधाकृष्ण दास), "लवंग लता" तथा "कुसुम कुमारी" (किशोरीलाल गोस्वामी), "नये बाबू" तथा "बड़ा भाई" (गोपालराम गहमरी), "जया" (कार्तिक प्रसाद खत्री), "धूर्त रसिकलाल" तथा "स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी" (लज्जाराम मेहता) और "ठेठ हिंदी का ठाठ" (अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध") आदि इस युग के प्रमुख उपन्यास हैं, जो उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक लिखे जा

चुके थे। इनमें से अंतिम केवल भाषा के नमूने की दृष्टि से लिखा गया था।

भारतेंदु युग में लिखे गये उपन्यासों को देखने से यह ज्ञात होता है कि किन परिस्थितियों हिंदी उपन्यास का जन्म और प्रारंभिक विकास हुआ। उनसे यह भी पता चलता है कि उस पर किन विचारधाराओं एवं किन भाषाओं का कितना प्रभाव पड़ा। हमारा विचार है कि कम से कम इस युग के उपान्यासों के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि ये समस्त उपन्यास लक्ष्यहीन हैं, कि इनका कोई निश्चित उद्देश्य नहीं है, कि इनका साहित्यिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है, कि इनके कथानक साधारण तिलिस्म और ऐय्यारी पर ही आधारित हैं उनमें समाज का यथार्थ चित्रण नहीं है, कि इनमें जीवन के विविध पक्षों और उनसे संबंधित समस्याओं को नहीं उठाया गया है, तथा कि वे चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सर्वथा असफल है।

भारतेंदु युग में ही इस बात का आभास मिलने लगा था कि आगे हिन्दी उपन्यास किन दिशाओं को ग्रहण करेगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद युग में जिस प्रकार के उपन्यास साहित्य की रचना हुई, उसका बीजारोपण भारतेंदु युग में ही हो चुका था। हाँ, एक महत्वपूर्ण भेद अथवा भिन्नता, जो इन दो युगों के उपन्यास साहित्य में है, वह यही कि अनेक समानताओं-असमानताओं के बावजूद, भारतेंदु युग के उपन्यास जीवन से जितने दूर थे, प्रेमचंद युग के उपन्यास उसके उतने ही निकट।

हिन्दी उपन्यास को नया मोड़ देने वाले प्रेमचंद अपने युग के ही नहीं, हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट उपन्यासकार हैं। आधुनिक युग में हिन्दी उपन्यास की जो नयी प्रवृत्तियाँ देख पड़ती हैं, अपने बीज रूप में, वे प्रेमचंद के उपन्यासों में न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में जो समस्यायें उठायी गयी हैं, वे व्यक्तिगत

और पारिवारिक न होकर समाजव्यापी हैं और सामाजिक सीमाओं का स्पर्श करती हैं। प्रेमचंद ने भारतीय नागरिक एवं ग्रामीण जीवन के अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर, और उनके विभिन्न पहलुओं पर एक मानववादी दृष्टिकोण से विचार किया। यही कारण है कि उनकी कृतियाँ जनता का साहित्य हैं, जिनमें भारतीय सामाजिक जीवन प्रतिबिंबित होता है। प्रेमचंद ने सर्वप्रथम हिन्दी उपन्यास को कल्पना की भूमि से उठाकर यथार्थ की धरती पर प्रतिष्ठित किया। उनके उपन्यासों में यथार्थवाद भी मिलता है और आदर्शवाद भी। अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार उन्हें विविध आलोचक यथार्थ-वादी अथवा आदर्शवादी मानते हैं। ग्रामीण-समाज, शहरी-समाज, सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक पाखंड, वेश्या-समस्या, अछूत-समस्या, राजनैतिक स्वतंत्रता, क्रांति का स्वरूप तथा समाज के विभिन्न वर्ग आदि उनके उपन्यासों के मुख्य विषय कहे जा सकते हैं।

प्रेमचंद के अतिरिक्त उनके युग के अन्य उपन्यासकारों में जयशंकर "प्रसाद" ("कंकाल", "तितली" और "इरावती"), पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" ("दिल्ली का दलाल", "चंद हसीनों के खुतूत", "बुधुआ की बेटी", "सरकार तुम्हारी आँखों में" तथा "जीजी जी" आदि), चतुरसेन शास्त्री ("हृदय की परख", 'हृदय की प्यास", "अमर अभिलाषा", "आत्म दाह" तथा "वैशाली की नगरवधू" आदि), प्रतापनारायण श्रीवास्तव ("विदा", "विकास" और "विजय"), ऋषभचरण जैन ("दिल्ली का व्यभिचार", "दिल्ली का कलंक", "दुराचार के अड्डे", "वेश्यापुत्र", "चंपाकली", "रहस्यमयी" आदि), राहुल सांस्कृत्यायन ("सिंह सेनापति", "जय यौधेय", "मधुर स्वप्न", "भागो नहीं दुनिया को बदलो", "जीने के लिये" आदि), चंडीप्रसाद "हृदयेश" ("मंगल प्रभात", "मनोरमा") आदि मुख्य हैं, जो प्रवृत्ति के अनुसार प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकार कहे जाते हैं।

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास में सामान्यतया वे ही प्रवृत्तियाँ अपने विकसित रूप में मिलती हैं, जिनका प्रारंभ प्रेमचंद युग में हो चुका था, यद्यपि इस भारी समानता के बावजूद, ऐसे उपन्यासों की संख्या भी कम नहीं है, जो प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों से प्रवृतिगत विभिन्नता रखते हैं।

प्रेमचंद से पहले कल्पनाशील विलक्षणता की जो प्रवृत्ति देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी तथा किशोरीलाल गोस्वामी आदि के उपन्यासों में मिलती थी, वह प्रेमचंद युग तक आते-आते समाप्त हो गयी और आज तो वह जासूसी उपन्यासों भर की विशेषता बन कर रह गयी है। इसी प्रकार भारतेंदु युग में राजनैतिकता की जो प्रवृत्ति थी, वह प्रेमचंद युग में विकास को प्राप्त हुई। प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में भी वह काफी मिलती है। लेकिन सन् ५० तक आते-आते उसका अभाव स्पष्ट दिखायी देने लगा और सन् ५० के बाद तो इस प्रवृत्ति के बहुत ही कम उपन्यास मिलते हैं।

समाज-सुधार की प्रवृत्ति हिन्दी उपन्यास की प्रारंभ से ही एक बड़ी विशेषता रही है। इस प्रवृत्ति का सूत्रपात भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुवादित उपन्यास "पूर्ण प्रकाश और चंद्रप्रभा" के द्वारा होता है, जो अपूर्ण था। इस उपन्यास में वृद्ध-विवाह तथा बाल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया गया है तथा स्त्री-शिक्षा का समर्थन। तत्कालीन अन्य उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों में इस प्रवृत्ति को स्थान दिया। श्रीनिवास दास के उपन्यास "परीक्षा गुरु"—जो हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक सामाजिक उपन्यास माना जाता है—में भी एसी ही अन्य सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है। उसमें नयी और पुरानी पीढ़ी की विषमता का चित्रण है। बालकृष्ण भट्ट ने "नूतन ब्रह्मचारी" में छात्रों को नैतिक शिक्षा दी है। उसमें यह दिखाया गया है कि किस प्रकार

एक सद्‌गुणी और सदाचारी युवक के चरित्र और व्यवहार से प्रभावित होकर एक डाकू सुधर जाता है। उनके दूसरे उपन्यास "सौ अजान एक सुजान" में दो धनी व्यापारी भाइयों का एक सुमित्र के कारण दुष्टों की संगति से छुटकारा दिखाया गया है। राधाकृष्ण दास ने गोवध-निवारण विषय पर एक उपन्यास "निस्सहाय हिन्दू" लिखा। अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" के उपन्यास "ठेठ हिन्दी का ठाठ" में बेमेल विवाह के दुष्परिणाम दिखाये गये हैं।

समाज-सुधार की यही प्रवृत्ति प्रेमचंद युग में भी प्रमुख रही, और प्रेमचंद तथा उनके समकालीन उपन्यासकारों ने इसे अपनाया। अधिक स्पष्ट कहा जाय तो प्रेमचंद युग के ही उपन्यासों में इस ओर अधिक ध्यान दिया गया जान पड़ता है। इसका प्रमुख कारण यह माना जा सकता है कि यह युग परिवर्तन का युग था और भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में अब तक प्राचीनता की प्रतिक्रिया स्वरूप नवीनता की लहर-सी आ गयी थी। इसीलिये उस युग में जन-जीवन की मान्यताओं तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा था। इस व्यापक विचार-परिवर्तन के फलस्वरूप अनेकों धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक आंदोलनों का भी सूत्रपात हुआ था।

जहाँ तक प्रेमचंद के उपन्यासों का सवाल है, प्रायः उनके सभी उपन्यासों में यह प्रवृत्ति किसी न किसी रूप में विद्यमान है। "प्रसाद" के "कंकाल" और "तितली" में भी यह प्रवृत्ति मिलती है, यद्यपि उनका तीसरा उपन्यास 'इरावती" इस ढंग का नहीं था। वृन्दावनलाल वर्मा के "अचल मेरा कोई" तथा "अमर बेल" आदि सामाजिक उपन्यासों में, विश्वंभरनाथ शर्मा "कौशिक" के "माँ", राजेश्वरप्रसाद के "मंच", ऋषभचरण जैन के "वेश्यापुत्र", प्रफुल्लचंद्र ओझा के "पाप और पुण्य", भगवतीप्रसाद वाजपेयी के "पतिता की साधना", सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" के "अप्सरा", धनीराम के

"वेश्या का हृदय", श्रीनाथ सिंह के "क्षमा", शिवपूजन सहाय के "देहाती दुनिया", तेजरानी दीक्षित के "हृदय का काँटा", चंद्रशेखर शास्त्री के "विधवा के पत्र" तथा चतुरसेन शास्त्री के "अमर अभिलाषा" आदि उपन्यासों में यह प्रवृत्ति विकास की ओर अग्रसर होती दिखायी देती है।

प्रेमचंद युग की समाप्ति के बाद द्वितीय महायुद्ध हुआ तथा सन् ४२ की सशस्त्र क्रांति। साम्यवादी तथा गांधीवादी आदि विचारधाराओं का काफी प्रचार हुआ। यही कारण है कि इस काल के लगभग लिखे गये अधिकांश उपन्यासों में इन्हीं राजनैतिक प्रवृत्तियों की बहुलता है। यों ये प्रवृत्तियाँ इस युग के पहले के भी अनेक उपन्यासों में अपने प्रारंभिक रूप में मिलती हैं। सन् १९३५ से लेकर ५० तक के पचास प्रतिशत् से अधिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मिलती है। सन् ५० के बाद से ऐसे उपन्यास लिखे जाने कम हो गये। इस प्रवृत्ति के उपन्यासकारों में राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल, जैनेंद्रकुमार, इलाचंद्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा तथा रांगेय राघव आदि हैं।

प्रेमचंदोत्तर युग में सामाजिकता की प्रवृत्ति अनेक नये रूपों में सामने आती है। अब वह समाज-सुधार, विधवा-विवाह, वृद्ध-विवाह, वेश्या-समस्या, स्त्री-शिक्षा आदि विषयों से अलग हटकर मनोविज्ञान, सेक्स और स्वच्छंद प्रेम की समस्याओं की ओर उन्मुख होती दिखायी देती है। प्रेमचंद युग में भी यह प्रवृत्ति संकेत रूप में यत्र-तत्र मिलती थी। लेकिन जैनेंद्र के उपन्यास "परख" के द्वारा इस प्रवृत्ति को विशेष महत्व दिया जाना प्रारंभ हुआ। तब से इसी प्रवृत्ति की प्रमुखता हिन्दी उपन्यास में दिखाई देती है। जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, भगवतीप्रसाद वाजपेयी यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, उपेंद्रनाथ "अश्क", "अज्ञेय", तथा नयी पीढ़ी के अनेक उपन्यासकारों की कृतियों में यह प्रवृत्ति मिलती है।

उत्तर प्रेमचंद काल के कुछ प्रमुख उपन्यासकारों को यदि लिया जाय, उन लेखकों को, जो प्रेमचंद के समय से ही लिख रहे हैं, या जिन्होंने प्रेमचंद के बाद लिखना शुरू किया, तो यह ज्ञात होगा कि उन्होंने अपने उपन्यासों में एक विशेष प्रकार की कथावस्तु का उपयोग किया है। जैसा कि हमने ऊपर भी कहा, सन् ३५ से लेकर ५० तक के बीच लिखे गये उपन्यासों में अधिकांश ऐसे हैं, जिनकी मूल कथा राजनीति से संबंध रखती है और जिनमें स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व भारतीयों द्वारा किये गये आंदोलनों, सरकार द्वारा किये गये दमन तथा अत्याचारों अथवा भारत-विभाजन के कारण उत्पन्न हुई परिस्थितियों या विषमताओं का चित्रण है।

अब हम हिन्दी में पिछले दस-पंद्रह वर्षों में लिखे गये श्रेष्ठ उपन्यासों के आधार पर यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि इतने समय के बाद हिन्दी उपन्यास ने आगे क्या प्रगति की है, और साथ ही, उसकी भावी उन्नति और दिशा-निर्माण की संभावनायें क्या हैं।

यहाँ एक सीधा प्रश्न किया जा सकता है। प्रेमचंद के बाद हिन्दी उपन्यास की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ क्या हैं ? इस प्रश्न का उत्तर एकाएक दे सकना सहज नहीं है क्योंकि इतना तो निश्चित है कि प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास प्रेमचंदयुगीन उपन्यास की निर्धारित सीमाओं को पार कर काफी आगे बढ़ चुका है। लेकिन यह बताना कठिन है कि उसने कौन सी नयी दिशायें ग्रहण की हैं। वास्तव में प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास अपने रूप-गठन संबंधी इतनी अधिक विविधतायें लिये हुये, अपनी उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ा है कि बिना उसका भली भाँति विश्लेषण किये हुये उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता। फिर भी, कम से कम, इतना तो कहा जा सकता है कि जहाँ तक उपन्यास-शिल्प का प्रश्न है, प्रेमचंदोत्तर उपन्यास ने अवश्य ही प्रगति की है। वैसे, शिल्प से अलग जो निर्धारण प्रेमचंद युग में हुए थे, उनके बारे

में अब तक हुई ठीक प्रगति का निश्चित विवरण दे सकना कठिन है।

प्रेमचंदोत्तर युग में कई उपन्यासकार ऐसे हैं, जो प्रेमचंद युगीन उपन्यासों से प्रवृत्तिगत एकता रखते हैं। उपन्यासकार पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" की शैली बहुत प्रभावशाली है। "दिल्ली का दलाल", "चंद हसीनों के खुतूत", "बुधुआ की बेटी" तथा "सरकार तुम्हारी आँखों में" आदि इनके उपन्यास हैं। इन्होंने भारतीय समाज के भीतर छिपी हुई घृणित वृत्तियों, वेश्यालयों, मदिरालयों आदि को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है और उनका यथार्थ चित्रण किया है। "बुधुआ की बेटी" इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा जाता है। विषय के अनुसार चतुरसेन शास्त्री का नाम भी इन्हीं के साथ लिया जाना चाहिये। इनकी शैली में वैसी तेजी नहीं है। "हृदय की परख", "हृदय की प्यास", "आत्म दाह", "अमर अभिलाषा" तथा "वैशाली की नगर वधू" आदि आपके मुख्य उपन्यास हैं, जिनमें अंतिम एक ऐतिहासिक उपन्यास है और अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यास "विदा", "विकास" और "विजय" आदि हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में निम्न और मध्य वर्गों को छोड़कर विशेष रूप से उच्चवर्गीय समाज का चित्रण किया है। इनकी भाषा और शैली साधारण है। कथोपकथन कहीं-कहीं अस्वाभाविक हैं। ऋषभचरण जैन ने "दिल्ली का व्यभिचार", "दिल्ली का कलंक", "दुराचार के अड्डे", 'वेश्यापुत्र", "चंपाकली" तथा "रहस्यमयी" आदि उपन्यास लिखे हैं। चंडीप्रसाद "हृदयेश" के उपन्यास "मंगल प्रभात" और 'मनोरमा" आदि हैं। इनमें चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त और कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में से अधिकांश ने प्रायः स्वच्छंद प्रेम की समस्या तथा उससे संबंधित अन्य प्रश्नों को उठाया है तथा मनोवैज्ञानिकता का आधार लेकर

अनेक नैतिक प्रश्नों पर विचार किया है। यहाँ शायद यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस काल के उपन्यासों में इस प्रवृति की बहुलता का कारण नैतिक धारणाओं में परिवर्तन है। आज नैतिकता का परंपरागत अर्थ उतना मान्य नहीं समझा जाता। पाप और पुण्य विषयक सिद्धांत भी आज पुराने अर्थों में उतने ही मान्य नहीं रह गये हैं। भगवतीचरण वर्मा ने सर्वप्रथम अपने उपन्यास "चित्रलेखा" में पाप और पुण्य की समस्या को उठाया है। उन्होंने पाप और पुण्य विषयक प्रचलित धारणाओं का विरोध करके नीति संबंधी नये मूल्यों की स्थापना करने का प्रयत्न किया है।

इलाचंद्र जोशी ने अपने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक आधार लेकर नैतिक प्रश्नों को सुलझाने की चेष्टा की है। इनके उपन्यासों में इनके कवि-रूप की झलक भी जहाँ-तहाँ मिलती है। कहीं-कहीं लंबे और अर्थहीन कथोपकथन भी हैं, जो उबानेवाले हैं। लेखक की एक बड़ी विशेषता यह है कि वह अनेक कथा-प्रसंगों को बड़ी कुशलतापूर्वक मिलाता है, जिससे उनका तारतम्य बना रहता है। "सन्यासी", "सुबह के भूले", "जिप्सी" तथा "जहाज का पंछी" आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनमें से अंतिम उनका नवीनतम उपन्यास है।

जैनेंद्रकुमार को इस युग का प्रमुख उपन्यासकार कहा जाता है। वह व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं। उनका सबसे पहला उपन्यास "परख" था। इसके बाद 'सुनीता", "त्यागपत्र", "कल्याणी", "सुखदा", "विवर्त", "व्यतीत" आदि प्रकाशित हुये। इनमें "सुनीता" और "त्यागपत्र" ही सफल कहे जाते हैं। "सुनीता" जैनेंद्र जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। जैनेंद्र के विषय में आलोचकों के कई मत हैं। यही कारण है कि जहाँ एक ओर आलोचक उनकी महत्ता के संबंध में एकमत हैं और उन्हें शरत् और प्रेमचंद्र के समकक्ष मानते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे उनकी कृतियों की कमियों के विषय में भी

अधिक मतभेद नहीं रखते तथा उनकी कृतियों को अतृप्त और विकृत मस्तिष्क का परिणाम बताते हैं। उनके अधिकांश उपन्यासों के विषय में आलोचकों को यह शिकायत है कि वे एकमात्र कार्बन-कापी हैं अथवा उनमें पुरानी अनुभूतियों को ही दोहराया गया है।

वृन्दावनलाल वर्मा के इधर कई ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" उनका सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी कथा उस समय से प्रारंभ होती है, जब भारत में मुगल साम्राज्य का पूर्णतया पतन हो गया था। उस समय यहाँ ऐसी कोई शक्ति न बची थी जो अंग्रेजों का सामना कर सकती। तत्कालीन देशी राजाओं व नवाबों की मनोवृत्ति दो प्रकार की थी। एक तो वे लोग जो अंग्रेजों की कृपा के अभिलाषी थे और दूसरे वे जो अंग्रेजी शासन के विरोधी थे। पहले प्रकार के लोग पूर्णतया अंग्रेजों के अधीन थे और इसी में प्रसन्न रहते थे, लेकिन दूसरी कोटि के लोगों के हृदय में उत्साह और साहस की कमी न थी। वे स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे और उसके लिये बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार थे। ऐसे लोगों में रानी लक्ष्मीबाई का नाम सबसे पहले आता है। लेखक ने इसी इतिहास-प्रसिद्ध नारी के जीवन और चरित्र पर यह उपन्यास लिखा है।

उनका दूसरा उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास "मृगनयनी" है। यह निन्नी नाम की एक गूजर कृषक कन्या और ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर की प्रणय-कथा पर आधारित है। इस कथा के समानांतर ही अटल और लाखी की कथा है, जो आदि से अंत तक चलती है। इस उपन्यास में लेखक ने कल्पना की सहायता से ऐतिहासिक तथ्य को काफी प्रभावशाली रूप में सामने रखा है। उपन्यास में वर्णित विभिन्न घटनायें तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक दशाओं पर प्रकाश डालती हैं, जिससे पाठक के सामने

उनका स्पष्ट चित्र-सा खिच जाता है। उपन्यास के बीच में ऐसे अनेक कथा-प्रसंग आये हैं, जो ऐतिहासिक तो हैं ही, साथ ही प्रभावशाली तथा उपन्यास की मूल कथा के तारतम्य को बनाये रखने में सहायक भी हैं। मृगनयनी अनेक आदर्श गुणों से संपन्न नारी है। उसके चरित्र की, संक्षेप में, चार प्रमुख विशेषतायें हैं--उसकी सरलता, उसकी ईमानदारी, उसका त्याग और उसकी कर्तव्य-भावना। ये सब विशेषतायें मिलकर उसे एक प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रदान करती हैं। लाखी का चरित्र इतना उच्च नहीं है। उसमें एक ओर यदि कुछ विशेषतायें हैं, तो दूसरी ओर अनेक नारी-स्वभाव की दुर्बलतायें भी हैं। उसका व्यक्तित्व आकर्षक तो है, लेकिन प्रभावशाली नहीं। राजा मानसिंह का चरित्र साधारणतया सामान्य ही कहा जायगा। वह एक ऐतिहासिक चरित्र है और इस दृष्टि से उनमें कोई दोष नहीं मिलता।

वर्मा जी का नया सामाजिक उपन्यास "अमरबेल" है, जो सहकारिता के विषय पर लिखा गया है। इस उपन्यास में लेखक ने सहकारिता के प्रश्न पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार किया है और उसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। लेखक ने उन गाँवों की दशा का वर्णन किया है, जिनमें सहकारिता का कार्य प्रारंभ हो गया है और जहाँ के निवासी इसमें विश्वास करने लगे हैं। इसमें सहकारिता के भविष्य की ओर भी संकेत किया गया है। "अमरबेल" की कथा मुख्यतया दो विषयों पर आधारित है--सहकारिता की भावना तथा अफीम का अवैध व्यापार। बांगुर्दन के एक स्कूल का अध्यापक टहलराम, डा० सनेहीलाल, सरकारी अफसर राघवन आदि कुछ लोग ऐसे हैं, जो सहकारिता के महत्व को समझते हैं और यह विश्वास करते हैं कि इसके आधार पर कार्य करने से भारतीय ग्रामीण जीवन को उन्नत बनाया जा सकता है और सुहाना गाँव का पंद्रह आने जमींदार देशराज, उसकी सहपाठिनी

कुमारी अंजना, नाहरगढ़ का राजा बाघराज तथा कुख्यात डाकू कालीसिंह आदि ऐसे व्यक्ति हैं, जो चोरी से अफीम का व्यापार करते हैं। राजा बाघसिंह और डाकू कालीसिंह तो यह काम स्थायी रूप से करते हैं, लेकिन जमींदार युवक देशराज और अंजना इस उद्देश्य से कि इस व्यापार में शीघ्र ही दो लाख रुपये कमा लिये जायें और फिर दोनों विवाह करके सुखमय जीवन व्यतीत करें। उपन्यास का घटना-क्रम उस समय से प्रारंभ होता है, जब जमींदारी उन्मूलन की संभावना विश्वास में परिवर्तित हो जाती है। सरकारी क्षेत्रों में यह आज्ञा जहाँ-तहाँ जारी कर दी जाती है कि चूँकि जमींदारी उन्मूलन से गाँवों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बहुत बड़ा अंतर आ जायगा, अतः यह आवश्यक समझा जाता है कि बढ़ती हुई जनसंख्या, अन्न की कमी तथा बेरोजगारी आदि बड़ी बड़ी समस्याओं का सामना करने के लिये तैयार रहा जाय और इस दिशा में प्रयत्न करना आरंभ कर दिया जाय। इन समस्याओं को हल करने के लिये सहकारिता के आधार पर खेती तथा कुटीर उद्योगों का विकास जरूरी जान पड़ता है। उपन्यास का नामकरण—"अमरबेल"—उन तरह-तरह की अमरबेलों के प्रतीक रूप में रखा गया है, जो समाज के वृक्ष को डसे जा रही हैं। वृक्ष अपने नये जीवन के लिये इन अमरबेलों के मारे कानून कहाँ बना पाता है। अमरबेलें तो शोषण के अपने मतलब का कानून बनाती हैं। वृक्षों की अमरबेलें तो दिखाई पड़ती हैं। उनका काट फेंकना सहज है। पर समाज और व्यक्ति की अनेक अमरबेलें दिखायी ही नहीं पड़तीं। इन अमरबेलों को नष्ट करने के साथ ही कहीं ऐसा न हो कि व्यक्ति और समाज भी काटकर गिरा दिये जायें।

उपन्यासकार राहुल सांकृत्यायन ने ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विषयों पर लिखा है। "सिंह सेनापति", "जय यौधेय", "मधुर स्वप्न", "भागो नहीं दुनिया को बदलो", "जीने के

लिये" आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिकता की छाप अधिक रहती है। यशपाल के उपन्यासों में यथार्थवादी चित्रण बहुत प्रभावशाली रूप में मिलता है। "मनुष्य के रूप", "पक्का कदम", "देशद्रोही", "दिव्या", "पार्टी कामरेड", "दादा कामरेड" तथा "अमिता" आपके उपन्यास हैं, जिनमें से "दिव्या" तथा "अमिता" ऐतिहासिक हैं और शेष राजनैतिक। राजनैतिक उपन्यासों में "मनुष्य के रूप" सबसे अच्छा है। इस उपन्यास में लेखक ने यथार्थवादी पृष्ठभूमि पर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य के बदलते हुये रूपों का कारण परिस्थितियों में परिवर्तन ही है। लेकिन हमारा अनुमान है कि उनकी हिन्दी साहित्य को मुख्य देन "दिव्या" है, जिसका स्थान हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों में है।

उपेंद्रनाथ अश्क के उपन्यास "सितारों के खेल", "गिरती दीवारें", "गर्म राख", "चेतन" तथा "बड़ी-बड़ी आँखें" आदि हैं। "गिरती दीवारें" यथार्थवादी उपन्यास है, जिसमें निम्न मध्यवर्ग का चित्रण किया गया है। इस वर्ग की अनेक समस्याओं को लेखक ने इस उपन्यास में उठाया है। सामान्यतया यही उनका सबसे अच्छा उपन्यास कहा जाता है। उनके नये उपन्यास "बड़ी-बड़ी आँखें" की मुख्य विशेषता यह है कि वह उपन्यासकार के विचार-दर्शन को काफी स्पष्टता से सामने रखता है। इसमें लेखक ने मानव जीवन से संबंध रखनेवाली अनेक समस्याओं पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार किया है। लेकिन इस उपन्यास में उस प्रौढ़ता का अभाव है, जो अश्क जैसे उपन्यासकार की कृति में होनी चाहिये। यही कारण है कि इसके अधिकांश पात्र प्राणहीन से लगते हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संबंध में लेखक के विचारों की जहाँ-तहाँ छाप मिलती है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय" के दो उपन्यास हैं— "शेखर : एक जीवनी" और "नदी के द्वीप"। इनमें से प्रथम का

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में शिल्प की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व है। अज्ञेय का दूसरा उपन्यास पहले से कई मानों में श्रेष्ठतर है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने "प्रेमपथ", "पिपासा", "लालिमा", "पतिता की साधना", "दो बहनें", "निमंत्रण" तथा "पतवार" आदि उपन्यास लिखे हैं। प्रवृत्ति के अनुसार वाजपेयी जी प्रेमचंद युग के उपन्यासकारों से समानता रखते हैं। लेकिन उनके नये उपन्यासों में सामाजिक जीवन की नयी समस्याओं पर विचार हुआ है। "मनुष्य और देवता" उनका नवीनतम उपन्यास है। उदयशंकर भट्ट का उपन्यास "नये मोड़" चरित्र-प्रधान है। इसका कथानक गठा हुआ है। कहीं-कहीं कथोपकथन बड़े हैं, जो कथा-प्रवाह में किसी सीमा तक बाधक सिद्ध होते हैं। इसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित समस्यायें उठायी गयी हैं। "सागर लहरें और मनुष्य" और "एक नीड़ दो पंछी" इनके नवीन उपन्यास हैं। "विषादमठ" "हुजूर", "घरौंदे" आदि उपन्यासों के लेखक डा० रांगेय राघव का सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास "मुर्दों का टीला" है। रांगेय राघव ने ऐतिहासिक, राजनैतिक और सामाजिक विषयों पर उपन्यास लिखे हैं। "राणा की पत्नी", "काका", "कब तक पुकारूँ" इनके नवीनतम प्रकाशित उपन्यास हैं।

"महाकाल" और "सेठ बाँकेमल" के लेखक अमृतलाल नागर का नया उपन्यास "बूंद और समुद्र" है। यह एक वृहद् उपन्यास है, जिसकी कथावस्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें चरित्र-चित्रण काफी प्रभावशाली ढंग से किया गया है। "चढ़ती धूप" के लेखक रामेश्वर शुक्ल "अंचल" का नया उपन्यास "मरु प्रदीप" है। इसमें मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को लेखक ने सामने रखा है। यह वर्ग कुछ ऐसी परि-स्थितियों में रहता है कि किसी अन्य वर्ग से किसी प्रकार का सामंजस्य या समझौता करना इसके लिये संभव नहीं है। वह उच्च

वर्ग के वैभव को प्राप्त करने की कल्पना करता है। उसमें बौद्धिक चेतना का अभाव नहीं होता। कुंठायें उसके जीवन को ग्रस्त किये रहती हैं। कृत्रिमता, बनावट और ऊपरी तड़क-भड़क उसके जीवन का अंग बन गयी है। आंतरिक और वाह्य विरोध उसके जीवन को विडंबनापूर्ण बना देते हैं। लेकिन अंचल का यह उपन्यास कई दृष्टियों से उनके पिछले उपन्यास से श्रेष्ठतर नहीं कहा जायगा।

"पथ की खोज" के लेखक डा० देवराज का नया लघु उपन्यास "बाहर भीतर" है। "पथ की खोज" में लेखक ने एक ही चेतना के बारे में सर्वज्ञ होने का दावा किया है। "बाहर भीतर" कई दृष्टियों से श्रेष्ठतर है। इसमें लेखक ने अनमेल विवाह की पुरानी समस्या को नये रूप में उपस्थित किया है। इसमें जीवन की उसी विषमता का उभरा हुआ चित्र सामने आया है। अमृत राय के उपन्यास "बीज" और "नागफनी का देश" हैं। "नागफनी का देश" शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। "बीज" लेखक का सर्वप्रथम उपन्यास है, जिसमें सामाजिक जीवन से संबंध रखनेवाली कई राजनैतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं को उठाया गया है। इसकी कहानी इन्हीं समस्याओं की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें यह दिखाया गया है कि पहले एक भावुक युवक का विश्वास गाँधीवाद पर रहता है। धीरे-धीरे उसके विचारों में, परिस्थितियों के बदलते जाने पर, परिवर्तन होता रहता है और वह साम्यवादी बन जाता है। इस उपन्यास की भाषा काफी प्रवाहपूर्ण है, यद्यपि चरित्र-चित्रण उतना अच्छा नहीं हुआ है।

विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में "ढलती रात" तथा "निशिकांत" उल्लेखनीय हैं। उनका नया उपन्यास "स्वप्नमयी" है, लेकिन वह उनके पिछले उपन्यासों से अधिक प्रौढ़ नहीं कहा जाता है। मन्मथनाथ गुप्त का नया उपन्यास "बहता पानी" है, जिसका कथानक सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आधारित है। देवेंद्र

सत्यार्थी के नये उपन्यास "कठपुतली" का नायक एक नाटककार है, जिसने जीवन भर विषम परिस्थितियों के कारण अपनी कला की सफलता के लिये कष्टों का सामना किया, और अपना साहस नहीं छोड़ा। इस उपन्यास की भाषा विशेष रूप से अच्छी कही जायगी। प्रभाकर माचवे के उपन्यास "परंतु" में नयी टेकनीक का प्रयोग किया गया है। इसे एक नया लेकिन असफल प्रयोग कहा जाता है। यह स्केच-शैली में लिखा गया है। उनका नवीन प्रकाशित उपन्यास "द्वाभा" शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

"बलचनमा" के लेखक नागार्जुन का नया उपन्यास "बाबा बटेसरनाथ" है। इसमें लेखक ने बाबा बटेसरनाथ--एक पात्र के परदादा द्वारा लगाये गये बट वृक्ष—के द्वारा चार पीढ़ियों की कथा कहलाई है। शिवप्रसाद मिश्र का उपन्यास "बहती गंगा" भी शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय है। हंसराज रहबर तथा कृष्णचंद्र के नये उपन्यासों में क्रमशः "परेड ग्राउंड" और "तूफान की कलियाँ" उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त उपन्यासकारों के अतिरिक्त अवधनारायण ("विमाता"), गोविंदवल्लभ पंत ("वरमाला", "प्रतिभा" तथा "जूलिया"), अनूपलाल ("निर्वासित", "रूपरेखा" तथा "ज्योर्तिमयी"), सर्वदानंद वर्मा ("संस्मरण" तथा "नरमेध"), उषादेवी मित्रा ("वचन का मोल", "पिया", "जीवन की मुस्कान"), नरोत्तमप्रसाद नागर ("दिन के तारे"), पहाड़ी ("सराय", "चलचित्र") शिवपूजन सहाय ("देहाती दुनिया"), यादवचंद्र जैन ("मल्ल-मल्लिका"), शिवसागर मिश्र ("पत्ते गिर पड़े"), रावी ("नये नगर की कहानी") नरेश मेहता ("डूबते मस्तूल"), कमल जोशी ('बहता तिनका") दयाशंकर मिश्र ("बुझते दीप") आदि का नाम उल्लेखनीय है। राजनैतिक विषयों पर लिखने वालों में गुरुदत्त तथा यज्ञदत्त शर्मा प्रमुख हैं।

राधाकृष्ण लिखित "सनसनाते सपने" नामक उपन्यास तिलिस्मी

शैली में है, फिर भी रोचक नहीं बना है। गिरिधर गोपाल का उपन्यास 'चाँदनी के खंडहर" है, जिसकी काल-सीमा केवल चौबीस घंटे है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का "सोया हुआ जल" हिन्दी उपन्यास शिल्प के क्षेत्र में नवीनतम प्रयोग कहा जा सकता है। मध्यवर्गीय अतृप्त भावनाओं का सफल चित्रण इसकी प्रमुख विशेषता है। लेखक ने इसमें मध्यवर्गीय जीवन का चित्र खींचते हुये यह दिखाने की चेष्टा की है कि उसकी अतृप्ति का मुख्य क्षेत्र सेक्स का है। इसके अंतर्गत रोमांस की लालसा, प्रेम की असफलता, वैवाहिक असंतोष, शारीरिक आकुलता तथा कुंठित भावनायें आदि हैं। राजेंद्र यादव के उपन्यास "प्रेत बोलते हैं" में निम्न मध्यवर्गीय जीवन से संबंधित कथा है। उक्त वर्ग के रूढ़िबद्ध संस्कार कहाँ तक उसे कुंठित बनाये हुये हैं, यह इस उपन्यास में चित्रित किया गया है। उसके संस्कारों के खंडहर में जो प्रेत बोल रहे हैं, वे जीवित प्रेत हैं। डा० लक्ष्मीनारायण लाल के तीन उपन्यास--"धरती की आँखें", "बया का घोंसला और सांप" और "काले फूल का पौदा"--हैं। "धरती की आँखें" में ग्रामीण जीवन का चित्र है, जिसमें कल्पना का समावेश अधिक हुआ है। "बया का घोंसला और साँप" में नयी शैली का सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। इसमें "धरती की आँखें" की तरह कल्पना का आधिक्य नहीं है। "काले फूल का पौदा" में नागरिक जीवन की अनेक जटिलताओं का चित्रण मिलता है। इस उपन्यास की सादगी उसका विशिष्ट गुण बन गयी है, यद्यपि इसके कई पात्र बिल्कुल प्रभावरहित जान पड़ते हैं।

नये उपन्यासों में प्रयोगात्मकता की दृष्टि से भी अनेक उपन्यास उल्लेखनीय हैं, जिनमें से कुछ का जिक्र ऊपर किया जा चुका है। स्थूल रूप से देखा जाय तो हिंदी उपन्यास में 'शेखर : एक जीवनी" के द्वारा नये प्रयोगों का आरंभ होता है। इस दृष्टि से अन्य उपन्यासों में ("बाणभट्ट की आत्मकथा") डा० धर्मवीर

भारती ("सूरज का सातवाँ घोड़ा") आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इधर लगभग दो वर्ष पहले फणीश्वरनाथ "रेणु" का सर्वप्रथम उपन्यास "मैला आँचल" प्रकाशित हुआ था। उसकी काफी चर्चा और आलोचना हुई जो अतिरंजित थी। हमारे विचार से यह उपन्यास शैली की दृष्टि से काफी सीमा तक एक सफल प्रयोग है। इसमें उपन्यासकार ने छोटी-छोटी मनोरंजक, लेकिन यथार्थ घटनाओं को सफलतापूर्वक समाविष्ट किया है। ये घटनायें एक ओर यदि उपन्यास में रोचकता लाने में सहायक सिद्ध हुई हैं, वहाँ दूसरी ओर इनसे कथानक की एकता सुरक्षित नहीं रह सकी है। हमारा अनुमान है कि "मैला आँचल" के लेखक में एक उपन्यासकार की अपेक्षा एक सफल कहानीकार बनने की योग्यता तथा क्षमता अधिक है। यही कारण है कि इस उपन्यास की अनेक घटनायें काफी रोचक होते हुये असबद्ध रह गयी हैं। वे ग्राम्य जीवन के विविध चित्र-मात्र हैं और उपन्यास में जबरदस्ती लाये गये जान पड़ते हैं। उपन्यास में एक सुसंगठित कथातत्व की अप्रधानता खटकती है। ग्राम्य अथवा अपेक्षाकृत अप्रचलित शब्दों का भी बहुलता से प्रयोग नहीं होना चाहिये था। चरित्र-चित्रण अधिकांश पात्रों का मनोवैज्ञानिक है, यद्यपि डा० प्रशांत आदि पात्र सशक्त नहीं हैं। शायद इसका कारण यह है कि लेखक एक विशेष क्षेत्र और कोटि के पात्रों के ही चित्रण में विशेष पटु है और इस दृष्टि से "मैला आँचल" में अनेक पात्र ऐसे मिल जाते हैं जो काफी सजीव हैं। उपन्यास की सबसे बड़ी कमी यह है कि वह काफी ऊब पैदा करता है--रोचक नहीं रह सका है। फिर भी यह कहा जायगा कि अपने आप में यह बहुत सशक्त उपन्यास न होते हुये भी लेखक के भविष्य के लिये आशान्वित करनेवाली कृति है।

हमारी सम्मति में, पिछले दशक का सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास "नदी के द्वीप" है।

प्रेमचंद युग के बाद हिंदी उपन्यास अनेक दिशायें ग्रहण कर चुका है, यह उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है। लेकिन इन सबसे अभी कोई निष्कर्ष निकाला जा सका है, यह संदेहास्पद है। साथ ही यह कहना गलत नहीं होगा कि उसके सही मूल्यांकन की चेष्टायें भी कम हुई हैं।

इस उदासीनता का ही यह फल दिखायी दे रहा है कि हिंदी उपन्यास नित्य नये मोड़ों पर आकर आगे बढ़ने की चेष्टा करते हुए भी, किसी निश्चित मार्ग पर अग्रसर नहीं हो पा रहा है। लेकिन इस प्रकार के किये गये और किये जा रहे अनेक प्रयत्न उपन्यासकारों की क्रियाशीलता के परिचायक और हिंदी उपन्यास के भावी उन्नत, और परिष्कृत रूप का आभास देनेवाले हैं। इसके साथ ही एक बात और भी है। वह यह कि, जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है, हिंदी के किसी भी आलोचक ने इसके मार्ग-निर्देशन के क्षेत्र में कोई ठोस प्रयत्न नहीं किया, यद्यपि अब आलोचकों का ध्यान इस ओर आकर्षित होता जान पड़ रहा है। हमारा अनुमान है कि एक ओर जहाँ यह प्रवृत्ति उनकी अजागरूकता तथा इस क्षेत्र में उनकी अकर्तव्यता का परिचय देती है, वहाँ दूसरी ओर उनके इसकी प्रगति के विषय में उपेक्षा भाव अथवा उदासीनता की भी परिचायक है। शायद इतना कहने के बाद यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं रह गयी है कि यह लक्षण हिंदी उपन्यास की भावी प्रगति की दृष्टि से शुभ नहीं है।

क्या यहाँ उसके कारणों की ओर संकेत करना आवश्यक नहीं है ? हमारी निश्चित धारणा है कि हिंदी का नया उपन्यास साहित्य अपने ऊपर पड़े अनेक प्रभावों को साथ लेकर आगे बढ़ रहा है और नित्य नये रूपों का परिचय दे रहा है। कहने का मतलब यह है कि जिस प्रकार भारतेंदुयुगीन उपन्यासों से पूरी तरह प्रभावित होते हुए भी प्रेमचंद युग का उपन्यास-साहित्य, उससे अलग अनेक

प्रवृत्तियों को साथ लेकर आगे बढ़ा, ठीक उसी प्रकार प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास, प्रेमचंदयुगीन उपन्यास-साहित्य के निर्धारित मार्गों से अलग भी अनेक नये रास्तों को तलाश कर रहा है। विवाद का विषय होते हुये भी, हमारी यह निश्चित धारणा है कि, प्रेमचंद युग के बाद भी हिंदी उपन्यास, उपयुक्त निर्देशन के अभाव के ब वजूद, आगे बढ़ सका है।

तो, हम अनेक न्यूनताओं के होते हुये भी, अपनी औपन्यासिक उपलब्धियों से निराश नहीं हैं। बल्कि, अगर अधिक स्पष्ट कहा जाय तो काफी आशान्वित हैं। यह इसलिये, कि हम जानते हैं कि किसी भी भाषा की उन्नति या स्तरीकरण के लिये, चालीस-पचास या सौ वर्ष बहुत कम हैं। और यदि हम विश्व की भाषाओं का आनुपातिक साहित्यिक अध्ययन करें, तो हम देखेंगे कि, उन भाषाओं को, जिन्हें आज समृद्ध कहा जाता है, अपने निर्माण में कई-कई सौ वर्ष लगाने पड़े हैं। अतः हिंदी—और यहाँ हमारा तात्पर्य निश्चय ही खड़ी बोली से है--साहित्य की जो सर्वांगीण उन्नति आज दिखायी दे रही है—भले ही उसकी सीमायें चारों ओर विस्तार से फैली हुई नहीं हैं--अगर हमारे सौ वर्षों से भी कम--अस्सी या पच्चासी वर्ष--समय के प्रयत्नों का फल है, तो भविष्य कुछ निराशाजनक नहीं है। बल्कि, इसके विपरीत हिंदी की उपर्युक्त औपन्यासिक प्रगति, इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि भविष्य में,--यदि उसका विकास-क्रम तथा गतिशीलता इसी स्थिति में रही--वह संसार की किसी भी भाषा के उपन्यास-साहित्य की समता कर सकेगा।

(इसलिये, हमारा विचार है कि प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास की उपलब्धियों को देखते हुये यह नहीं कहा जा सकता कि वह अभी भी अपने विकास की अप्रौढ़ अथवा अपरिपक्वावस्था में है। हाँ, यह स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि

हिंदी का सामान्य साहित्यिक मानदंड अभी विश्व-स्तर का नहीं है। और, साथ ही, विश्व उपन्यास की तुलना में हिन्दी उपन्यास को तौलना सर्वथा दूसरी बात है। वैसे यह मानने में कोई बुराई नहीं है कि हिंदी में प्रेमचंद को छोड़कर कम उपन्यासकार ऐसे दिखायी देंगे जिसे विश्व के महान् उपन्यासकारों की पंक्ति में बिठाते हुए, उनके महत्व की घोषणा करने में हमें गर्व या संतोष हो। लेकिन हम फिर यह कहें, कि हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि जहाँ विश्व की अन्य समृद्ध भाषाओं–फ्रेंच, रशियन, अंग्रेजी आदि–का उपन्यास-साहित्य अपने पीछे सैकड़ों वर्षों की पुरानी परंपराओं को लिये हुये है, वहाँ हिंदी उपन्यास अभी मुश्किल से पचास-साठ वर्ष पुराना है, और इस आनुपातिक दृष्टि से उसका महत्व निस्संदेह बहुत अधिक है, जो किसी सीमा तक भी नैराश्य का अनुभव नहीं करने देता, बल्कि अपने उन्नत भावी रूप का आभास देते हुये दृढ़ता से अपने वर्तमान महत्व की घोषणा करता है।)

हिन्दी कहानी

हिन्दी कहानी का इतिहास बहुत थोड़े वर्षों का है। हिन्दी में कहानी-साहित्य का प्रारंभिक रूप "बृहत्कथा" आदि में मिलता है। आधुनिक गद्य के प्रचार के साथ ही हिन्दी में आधुनिक कहानी का भी प्रारंभ हुआ। हिंदी की सर्वप्रथम कहानी इंशाअल्ला खाँ लिखित "रानी केतकी की कहानी" मानी जाती है। इसके बाद लिखी गयी कृतियों में 'सिंहासन बत्तीसी", "बैताल पचीसी", "माधवानल कामकंदला", "प्रेमसागर" तथा "नासिकेतोपाख्यान" आदि का नाम उल्लेखनीय है। ये सभी पुस्तकें उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में प्रकाशित हो चुकी थीं।

लेकिन यह एक महत्वपूर्ण बात है कि उपर्युक्त कहानी-साहित्य तथा उपन्यास में बहुत कम भेद है। यों कहानी भी आधुनिक युग की देन समझी जाती है। वास्तविक अर्थों में आधुनिक हिंदी कहानी का जन्म प्राय: बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से माना जाता है, जब अंग्रेजी तथा बंगला के प्रभाव के फलस्वरूप आधुनिक ढंग की कहानी लिखा जाना आरंभ हुआ। बीसवीं शताब्दी के इन आरंभिक वर्षों में हिंदी कहानी के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग किये गये। इस अवधि को आधुनिक हिंदी कहानी का प्रयोगकाल भी कहा जाता है।

यहाँ हम प्रेमचंद के परवर्ती मुख्य कहानीकारों का परिचयात्मक व्याख्या करने के साथ ही साथ हिंदी कहानी की

नवीनतम प्रवृत्तियों का भी परिचय देने का प्रयत्न करेंगे। प्रवृत्ति के अनुसार वर्तमान कहानीकारों में से बहुत से प्रेमचंद युग के हैं।

रायकृष्णदास की लिखी हुई कहानियाँ "सुधांशु" और "अनाख्या" नामक दो संग्रहों में मिलती हैं। इनकी कहानियों के विषय सामाजिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक हैं। "गहूला", "प्रसन्नता की प्राप्ति", "नर राक्षस", "अंतःपुर का आरंभ", 'एथेंस का सत्यार्थी" तथा "भय का भूत" आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। चंडीप्रसाद "हृदयेश" मुख्यतया उपन्यासकार हैं। लेकिन हमारा अनुमान है कि इन्हें अपने उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों में अधिक सफलता मिली है। "नंदन निकुंज" और "वन माला" में इनकी कहानियाँ मिलती हैं। विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक का कहानी लिखने का ढंग बिल्कुल सादा है। इनकी कहानियों का विषय सामाजिक समस्यायें ही हैं। इनकी लिखी हुई कहानियों की संख्या कई सौ है। "कल्प मंदिर", "मणि-माला", "चित्र-शाला" आदि इनके कहानी-संग्रह हैं। इनकी "रक्षा बंधन" तथा "ताई" शीर्षक कहानियाँ काफी लोकप्रिय हैं। प्रतापनारायण श्रीवास्तव भी प्रायः उपन्यासकार के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इनका कहानी-संग्रह "आशीर्वाद" है। कहानीकार सुदर्शन भाषा-शैली की दृष्टि से प्रेमचंद के सबसे अधिक निकट हैं। उनकी सर्वप्रथम कहानी "हार की जीत" थी। "सुदर्शन सुधा", "सुदर्शन सुमन", "सुप्रभात", "तीर्थ यात्रा", "चार कहानियाँ", "पुष्प लता", "गल्प मंजरी", 'परिवर्तन", "पनघट" तथा "नगीना" आदि उनके प्रतिनिधि कहानी-संग्रह हैं।

राजा राधिकारमण सिंह की कहानियों में "कानों में कँगना" तथा "बिजली" बहुत प्रसिद्ध हैं। बदरीनाथ भट्ट तथा ज्वालादत्त शर्मा की क्रमशः "मुंसिफ साहब की मरम्मत" और "दर्शन" शीर्षक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। चतुरसेन शास्त्री की कहानियाँ भाषा में ओज और चमत्कार की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। "अक्षत", "रजकण",

"दे खुदा की राह पर" तथा "नवाब ननकू" आदि कहानी-संग्रहों में ये मिलती हैं। इनकी कहानियों में "पानवाली", "ककड़ी की कीमत", "दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी" आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। शिवपूजन सहाय ने कहानियाँ कम लिखी हैं, लेकिन उनकी कहानियों में प्रौढ़ता काफी मिलती है। उनकी "कहानी का प्लाट" शीर्षक कहानी लोकप्रिय है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी पहले निबंध लेखक हैं, फिर कहानीकार। इनकी कहानियों में "अदृष्टवाद", "धर्म", "रहस्य" तथा "गूँगी" आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। बालकृष्ण शर्मा "नवीन" तथा गोविंदवल्लभ पंत की क्रमशः "गोई जीजी" और "मिलन मुहूर्त" आदि कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

सामाजिक समस्याओं पर तीखी शैली में लिखने वालों में पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" का मुख्य स्थान है। उनकी कहानियाँ "दोज़ख़ की आग", "चिनगारियाँ", "बलात्कार" तथा "कला का पुरस्कार" आदि संग्रहों में मिलती हैं। "कला का पुरस्कार" उनका नवीनतम कहानी-संग्रह है। इसमें उनकी पंद्रह कहानियाँ संगृहीत हैं। आधुनिक जीवन में सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का कितना अधिक महत्व है, तथा वे जीवन को कितना अधिक प्रभावित करती हैं, इसकी ओर लेखक ने इन कहानियों में संकेत किया है। लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आज का मनुष्य इन विडंबनाओं के बीच अपने आपको किस सीमा तक विवश और निर्बल अनुभव करता है।

विनोदशंकर व्यास का नाम भी प्रतिनिधि कहानीकारों में आता है। इन्होंने मौलिक कहानियाँ तो लिखी ही हैं, साथ ही "मधुकरी" (चार भाग) के नाम से हिंदी की श्रेष्ठ कहानियों का संकलन भी प्रकाशित किया है, जो इनका एक महत्वपूर्ण कार्य है। "कल्पनाओं का राजा" इनकी प्रतिनिधि कहानी समझी जाती है। "निराला" की कहानियों में "चतुरी चमार" विशेष प्रसिद्ध है। यों

इन्होंने कहानियाँ बहुत कम लिखी हैं। वृन्दाबनलाल वर्मा सबसे पहले उपन्यासकार हैं, फिर नाटककार और अंत में कहानीकार। इनकी कहानियों के संग्रह "कलाकार का दंड" तथा "शरणागत" आदि हैं। उपेंद्रनाथ अश्क प्रारंभ में उर्दू में लिखते थे और बाद में हिंदी में आये। जब उन्होंने हिंदी-साहित्य में पदार्पण किया, तब तक वह उर्दू में एक श्रेष्ठ कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। इनकी कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। "डाची", "काँकड़ा का तेली", "गोखरू", "बच्चे", "कैप्टेन रशीद", "बैंगन का पौधा", "एरोमा", "दो आने की मिठाई", "चपत", "रसपान", "पत्नीव्रत" तथा "पिंजरा" आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ मानी जाती हैं।

"आँखों देखी कहानियाँ" में रामनरेश त्रिपाठी की लिखी हुई सत्य घटनाओं पर आधारित कहानियाँ हैं, जिनमें से अधिकांश के पात्र भी जीवित हैं। ये कहानियाँ घटना-प्रधान हैं। इनमें से कुछ कहानियाँ काफी मार्मिक हैं। रचना-कौशल की दृष्टि से इनमें से कई कहानियाँ काफी कमज़ोर कही जायँगी। इलाचंद्र जोशी की कहानियाँ "दीवाली", "ऐतिहासिक कथायें" तथा "होली" आदि में संगृहीत हैं। जोशी जी को अपने उपन्यासों में जितनी सफलता मिली, उसकी चौथाई भी कहानियों में नहीं मिली। आधुनिक मनोविश्लेषणवादी कहानीकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी कहानियों में वातावरण का सफल और प्रभावशाली चित्रण मिलता है, जो उनकी प्रमुख विशेषता है।

जैनेंद्रकुमार प्रेमचंद के बाद दूसरे बड़े कहानीकार माने जाते हैं। इन्होंने सामाजिक तथा राजनैतिक विषयों पर ही अधिक कहानियाँ लिखी हैं। इधर उनकी कहानियाँ "जैनेंद्र की कहानियाँ" (सात भाग) के अंतर्गत प्रकाशित हुई हैं। इनमें से पहले भाग में राष्ट्रीय और क्रांतिकारी कहानियाँ, दूसरे में बाल-मनोविज्ञान और

वात्सल्य की कहानियाँ, तीसरे में दार्शनिक और प्रतीकात्मक कहानियाँ, चौथे में प्रेम और विवाह-संबंधी कहानियाँ, पाँचवें में प्रेम के विविध रूपों की कहानियाँ, छठे में विविध सामाजिक समस्याओं की कहानियाँ, तथा सातवें में अन्य महत्वपूर्ण कहानियाँ संगृहीत हैं। कृष्णानंद गुप्त की "जल धारा", वाचस्पति पाठक की "सूरदास" आदि कहानियाँ भी प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त जनार्दनप्रसाद झा "द्विज", धनीराम "प्रेम", दुर्गादत्त त्रिपाठी, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, प्रफुल्लचंद्र ओझा "मुक्त", परिपूर्णानंद बर्मा, सुमित्रानंदन पंत, वीरेश्वर सिंह, ज्ञानचंद्र जैन आदि का नाम भी इस काल के कहानीकारों में उल्लेखनीय है। भगवतीचरण वर्मा की कहानियाँ भाषा-शैली और भाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। "दो बाँके" तथा 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी" आदि इनकी लोकप्रिय कहानियों में से हैं। "निर्गुण" की कहानियों की प्रमुख विशेषता चरित्र-चित्रण की पूर्णता है। रामवृक्ष बेनीपुरी ने चरित्र-प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। श्रीराम शर्मा का शिकार-संबंधी कहानियाँ लिखनेवालों में प्रमुख स्थान है। गुलाबराय, जी० पी० श्रीवास्तव तथा अन्नपूर्णानंद ने हास्य-कथायें लिखी हैं। "पहाड़ी" ने मध्यवर्गीय जीवन पर बहुत मार्मिक कहानियाँ लिखी हैं।

अपने विषय के कहानीकारों में यशपाल काफी ऊँचे ठहरते हैं। उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता वस्तु तथा शैली की नवीनता है। उनके पात्र शहरी समाज के सभी वर्गों के होते हैं और उनमें मध्यम या निम्न वर्ग का प्राधान्य रहता है। उनकी अधिकांश कहानियाँ समस्यामूलक हैं, जो सामाजिक नैतिकता का भंडाफोड़ करती हैं। यशपाल के कहानी-संग्रह "अभिशप्त", "वो दुनिया", "ज्ञान दान", "पिंजरे की उड़ान", "तर्क का तूफान", "भस्मावृत्त चिंगारी", "फूलो का कुर्ता", "धर्म युद्ध", "उत्तराधिकारी", "चित्र का शीर्षक" तथा "तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूँ" आदि

हैं। "उत्तराधिकारी" में उनकी पहाड़ी-जीवन से संबंधित नौ कहानियाँ हैं, जिनमें जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। "चित्र का शीर्षक" में उनकी समस्यामूलक कहानियाँ हैं। इन कहानियों में लेखक बहुत से कटु सत्य उभार कर सामने लाया है। स्थितियों की विषमताओं का चित्रण तथा सजीव चरित्र-चित्रण इनकी मुख्य विशेषता है।

"नवाबी मसनद" के लेखक अमृतलाल नागर का तीखी और हास्य-व्यंग्य से पूर्ण कहानी लिखनेवालों में विशिष्ट स्थान है। सियारामशरण गुप्त, मोहनलाल महतो वियोगी, रामचंद्र तिवारी आदि की भी कई कहानियाँ लोकप्रियता की दृष्टि से महत्व रखती हैं। अन्य कहानीकारों में ऋषभचरण जैन ("बिखरे मोती"), भगवतशरण उपाध्याय ("सबेरा", "संघर्ष" आदि), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ("जिंदगी मुस्कराई"), हरिशंकर शर्मा, रांगेय राघव, गंगाप्रसाद मिश्र, केशवचंद्र वर्मा, चंद्रकिरण सौनरिक्सा, कर्तार सिंह दुग्गल, देवेंद्र सत्यार्थी, बलवंत सिंह, अमृत राय, चौधरी तेजबहादुर सिंह, प्रभाकर माचवे आदि का नाम उल्लेखनीय है।

नयी पीढ़ी के कहानीकारों में कमल जोशी ("पत्थर की आँख", "चार के चार", "फूलों की माला"), धर्मवीर भारती ("चाँद और टूटे हुये लोग"), देवेंद्र इस्सर ("फूल, बच्चा और जिंदगी"), रामकृष्ण ("अपना राज, अपने आदमी"), नमिता लुंबा ("जिंदगी के अनुभव"), राजेंद्र यादव ("खेल खिलौने"), ओंकार शरद ("झपकियाँ"), विष्णु प्रभाकर ("संघर्ष के बाद"), कृष्ण चंदर ("पाँच रुपये की आजादी"), मोहनसिंह सेंगर ('नरक का न्याय"), मन्मथनाथ गुप्त ("बलि का बकरा", "रक्त के बीज"), देवीदयाल चतुर्वेदी "मस्त" ("हवा का रुख"), शिवप्रसाद सिंह ("आरपार की माला"), हरिशंकर परसाई ("हँसते हैं रोते हैं"), मार्कंडेय ("पानफूल", "महुये का पेड़") आदि हैं, जो इस क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं।

हिन्दी की नयी कहानी पर, शिल्प पक्ष का जहाँ तक प्रश्न है, पाश्चात्य कहानी-कला का काफी प्रभाव पड़ा। लेकिन इसका अर्थ यह निकालना गलत होगा कि इसमें यूरोपीय कहानी-शिल्प का अंधानुकरण परिलक्षित होता है। वास्तव में इस तथा इस प्रकार के पड़े कई अन्य प्रभावों के बावजूद भी उसमें एक प्रकार की मौलिकता और नवीनता है, जो उसकी कलापूर्णता का प्रमाण है। इसका कारण यह हो सकता है कि वह भारतीय वातावरण में अपनी साहित्यिक और परम्परागत पद्धति के अनुसार विकास को प्राप्त हुई तथा समय-समय पर पड़ते गए विदेशी प्रभाव से मुक्त न रह सकी। और यह एक विशेष बात है कि ऐसा अनजाने में नहीं हुआ। मतलब यह है कि हिन्दी कहानीकारों ने स्वयं उसकी भावभूमि को नए धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया और इस प्रयास में उन्हें काफी सीमा तक सफलता भी मिली। ध्यानपूर्वक देखा जाय तो भारतेन्दु युग से लेकर अब तक की हिंदी कहानी ने एक निश्चित प्रक्रिया के अनुसार उन्नति की है। उसके बदले हुये रूप उसके वर्तमान रूप की एक अनिवार्य प्रक्रिया की सीढ़ियों जैसे लगते हैं, जिनके अभाव में वह किस ओर मुड़ती, यह कहना कठिन है।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी का धरातल सामान्यतया प्रेमचन्द-युगीन कहानी के धरातल से अधिक भिन्न नहीं कहा जा सकता। प्रवृत्ति के अनुसार देखा जाय तो इस युग के बाद हिन्दी कहानी में आदर्श में तथा यथार्थ के साथ ही मनोवैज्ञानिकता भी आ गयी और धीरे-धीरे उसका आधिक्य होने लगा। शिल्प की दृष्टि से उस पर अवश्य अब तक निर्धारित नवीनतम रूपों का प्रभाव पड़ा—जो उसने ग्रहण किया और यह उसके कलात्मक निखार में भी सहायक सिद्ध हुआ। कथानक की दृष्टि से भी प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-कहानी में नवीन तत्त्वों का समावेश हुआ है। यों अगर यह कहा जाय तो

अनुचित न होगा कि उसमें वातावरण का प्राधान्य होने लगा। व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की बहुलता भी धीरे-धीरे उसकी एक विशेषता सी बन गई। इस पृष्ठभूमि में अनेक कहानीकारों ने सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन की समस्याओं को उभारा है तथा वे पारिवारिक जीवन की समस्याओं को सामने लाए हैं और इन पर यथाशक्ति प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। मानसिक विचारों या अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण भी इस युग की कहानियों में बहुलता से मिलता है। इन विविध क्षेत्रों में मौलिकता की सृष्टि करना प्रतिभाशाली कहानीकारों के लिए ही सम्भव है।

हिंदी की नयी कहानी के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

—प्रेमचंदोत्तर कहानी ने रचना-पद्धति, या विषय-निर्वाचन की दृष्टि से उन्नति की है।

—प्रेमचंदोत्तर कहानीकारों में सामान्यतया सामाजिक चेतना थोड़ी या बहुत अवश्य मिलती है।

—कहानी के क्षेत्र में नये प्रयोगों का यह फल हुआ है कि उसने शैली की दृष्टि से काफी प्रगति की है।

—प्रेमचंदयुगीन कहानी में कथानक की प्रमुखता होती थी। बाद में उसका अभाव उसमें मिलने लगा। अब उसमें थोड़े समय का जीवन-विवरण या मानसिक अंतर्द्वंद्व का चित्रण तक पर्याप्त समझा जाता है।

—हिंदी की नयी कहानी अपनी पूर्ववर्ती कहानी की अपेक्षा नवीनतम तत्वों का आभास देती है।

—नयी हिंदी कहानी में शिल्प पक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया गया जान पड़ता है।

—नयी कहानी-रचना की आधारभूमि मनोविश्लेषणात्मक कही जा सकती है।

प्रेमचंद के बाद हिंदी कहानी ने कौन-सी नयी दिशायें ग्रहण की हैं, तथा हिंदी की नयी कहानी की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ क्या हैं, उपर्युक्त कहानीकारों की कृतियों का अध्ययन करने से इसका आभास मिल सकता है।

हिन्दी नाटक

नाटक का प्रचार भारतवर्ष में आज से कई हजार वर्ष पूर्व हो चुका था। लेकिन बाद में काफ़ी समय तक यहाँ विदेशियों के आक्रमण होते रहने, और विशेष रूप से मुगल साम्राज्य स्थापित हो जाने के कारण उसका पतन होने लगा और धीरे-धीरे उसके चिह्न तक मिटने लगे। हाँ, बाद में नाटक के स्थान पर समाज में कुछ अन्य लीलाओं आदि का प्रचार होने लगा, जो उसके ही सामयिक या भिन्न रूप कहे जा सकते हैं। लेकिन यह धारणा सही नहीं है कि आधुनिक हिंदी नाटक का आधार ये लीलायें आदि थीं। वास्तव में हिंदी नाटक का प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में अंग्रेजी साहित्य के प्रचार के फलस्वरूप आरंभ हुआ।

यहाँ हम मुख्य रूप से प्रसाद के परवर्ती नाटककारों की नवीनतम कृतियों पर विचार करेंगे। स्थूल रूप से देखा जाय, तो आज हिंदी नाटक में जो प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, वे किसी न किसी रूप से भारतेंदु युग की प्रवृत्तियों से संबंधित जान पड़ेंगी। यों कुछ नयी समस्यायें अथवा उनकी प्रवृत्तियाँ इस कथन का अपवाद भी हो सकती हैं, लेकिन वे हिंदी नाटक की नवीनतम प्रवृत्तियाँ हैं। यदि उन प्रारंभिक प्रवृत्तियों की परंपरा के अनुसार देखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि आधुनिक नाटक में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से देख पड़ती हैं—

—पहली प्रवृत्ति पौराणिक नाटकों की कही जायगी। इस

प्रवृत्ति का आधुनिक हिंदी नाटक में सूत्रपात भारतेंदु हरिश्चंद्र के "सती प्रताप" नाटक से हुआ माना जाता है। विकास-क्रम के अनुसार देखा जाय, तो भारतेंदु के परवर्ती नाटकों में, और अब तक भी, किसी न किसी रूप में यह प्रवृत्ति चली आती है। वर्तमान युग में तो यह एकांकी तक में मिलती है।

——दूसरी प्रवृत्ति सामाजिक नाटकों की कही जा सकती है। इस प्रवृत्ति के नाटकों में किन्हीं सामाजिक समस्याओं अथवा कुरीतियों का विरोध किया जाता है। भारतेंदु काल में यह प्रवृत्ति मुख्यतया अनमेल विवाह, अशिक्षा, स्त्री-शिक्षा, स्त्री-स्वतंत्रता, आदि तक ही सीमित थी, लेकिन अब इसमें सामाजिक जीवन की अन्य अनेक समस्याओं को भी समावेशित किया जा चुका है।

——तीसरी प्रवृत्ति राजनैतिक नाटकों की कही जायगी। भारतेंदु काल में यह प्रवृत्ति सामाजिक नाटकों की प्रवृत्ति से मिली-जुली थी। लेकिन राजनैतिक दशा में क्रमशः होते रहने वाले परिवर्तन के कारण धीरे-धीरे यह उससे अलग हो गयी।

——चौथी प्रवृत्ति ऐतिहासिक नाटकों की है। श्रीनिवास दास लिखित "संयोगिता-स्वयंवर" तथा राधाकृष्ण दास लिखित "महाराणा प्रताप" आदि नाटकों से इस प्रवृत्ति का प्रारंभ माना जा सकता है। हिंदी नाटककारों में इस प्रवृत्ति के सबसे बड़े नाटककार जयशंकर "प्रसाद" हैं, जिनके "राज्यश्री", "विशाख", "अजातशत्रु", "चंद्रगुप्त", "स्कंदगुप्त विक्रमादित्य", "ध्रुवस्वामिनी" आदि ऐतिहासिक नाटकों ने इसे आगे बढ़ाया। यह प्रवृत्ति वर्तमान काल में भी हिंदी नाटक की मुख्य प्रवृत्तियों में है।

——हिंदी नाटक की पाँचवीं प्रवृत्ति मूल रूप से प्रेम तत्व पर आधारित है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के "चंद्रावली" नाटक को इस प्रवृत्ति का प्रथम नाटक कहा जा सकता है। वर्तमान हिंदी नाटक में यह प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक आधार लेकर आगे बढ़ी है।

आधुनिक हिंदी नाटक की वृद्धि में कई बातें बाधक सिद्ध हुईं। जिन परिस्थितियों में उनका जन्म हुआ था, और उसके पनपने तथा विकसित होने के समय जो परिस्थितियाँ थीं, वे उसके कतई अनुकूल नहीं कही जा सकतीं। इस कारण जो मुख्य प्रभाव हिंदी नाटक पर पड़ा, वह यह कि साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ नाटक कम लिखे गये। हिंदी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव प्रारंभ से ही रहा है। स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पाश्चात्य नाट्य-साहित्य के तत्वों को ग्रहण किया था। कुछ हद तक यह प्रवृत्ति भारतीय परंपरा की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुई भी कही जा सकती है।

वर्तमान युग के नाटककारों में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने "अपना पराया" तथा "धर्म की धुरी" नामक दो नये नाटक लिखे हैं। इनमें से "अपना पराया" में लेखक ने यह दिखाया है कि सामाजिक संस्कारों का एक मनुष्य के जीवन पर कितना प्रभाव पड़ता है। इस नाटक में जो दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है, वह आदर्शवादी कहा जायगा। लेखक ने दूसरे नाटक "धर्म की धुरी" में भारत के विभाजन के कारण उत्पन्न हुई परिस्थितियों को चित्रित करते हुये गाँधीवादी दृष्टिकोण का समावेश किया है। जगह-जगह विश्व-बंधुत्व और मानवतावाद की भावनायें मिलती हैं।

नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र का नया ऐतिहासिक नाटक है "वितस्ता की लहरें"। मिश्र जी मूलतः आदर्शवादी नाटककार कहे जाते हैं। भारतीय संस्कृति में उनका अटूट विश्वास है। "वितस्ता की लहरें" में कथा-संकेत के अंतर्गत उन्होंने अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करते हुये लिखा है—वितस्ता के तट पर दो विभिन्न जातियों और संस्कृतियों की टक्कर हुई थी, जो अपने विधि-विधान और जीवन-दर्शन में एक-दूसरी के विपरीत थीं। यवन-सैनिकों में विजय का उन्माद था तो पुरु और केकय जनपद के नागरिकों में देश के धर्म और पूर्वजों के आचरण की रक्षा का भार। दोनों ने

एक-दूसरे को जाना और समझा और बहुत अंशों में बैर और द्रोह मिटाकर शील और सहयोग के बढ़ने का अवसर दिया गया। प्रस्तुत नाटक में ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना की सहायता से नाटकीय रूप देने की चेष्टा की गयी है। कुछ बातें ऐतिहासिक प्रमाणों के विरुद्ध मालूम होती हैं। चरित्र-चित्रण भी कहीं-कहीं स्वाभाविक नहीं बन सका है। भारतीय संस्कृति का जो चित्र नाटककार ने खींचा है, वह एक आदर्श मात्र लगता है।

"चक्रव्यूह" लक्ष्मीनारायण मिश्र का नया पौराणिक नाटक है। अब तक मिश्र जी कई ऐतिहासिक नाटक लिखकर प्रसिद्धि पा चुके हैं। लेकिन पौराणिक नाटकों के क्षेत्र में "नारद की वीणा" के बाद यह उनका दूसरा प्रयास है। इनका मुख्य नाटक "चक्रव्यूह" है जो पौराणिक कथा पर आधारित है यद्यपि कहीं-कहीं लेखक ने उसमें अपनी कल्पना की सहायता से मौलिकता लाने का भी प्रयास किया है। इसी कारण इसमें कहीं-कहीं थोड़ी अस्वाभाविकता भी आ गयी है।

"रक्षा-बंधन", "शिवा-साधना", "स्वप्नभंग" और "प्रतिशोध" आदि के लेखक हरिकृष्ण "प्रेमी" का नया ऐतिहासिक नाटक "कीर्ति-स्तंभ" है। इनके पिछले नाटकों में "रक्षा-बंधन" सर्वाधिक प्रसिद्ध है। "कीर्ति-स्तंभ" का विषय मेवाड़ के राजवंश से संबंधित ऐतिहासिक कथा है। नाटककार उदयशंकर भट्ट के ऐतिहासिक नाटकों में "शक विजय" उल्लेखनीय है। उनके अन्य नाटकों में "मत्स्यगन्धा", "सगर-विजय" तथा "अम्बा" आदि प्रसिद्ध हैं। "शक-विजय" की कथा सुगठित और सम्बद्ध है। इसमें नाटककार ने कल्पना का सहारा अवश्य लिया है, लेकिन ऐतिहासिक तथ्यों की भी रक्षा की है। अभिनेयता की दृष्टि से भी यह एक सफल नाटक है।

"नया समाज" उदयशंकर भट्ट का दो अंकों का नया नाटक है, ज़ो जमींदारी-उन्मूलन से संबंधित समस्यायों पर आधारित है।

रंगमंच की दृष्टि से यह नाटक विशेष सफल नहीं कहा जा सकता। आज के समाज में वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप एक विचित्र भिन्नता आ गयी है, जिसके कारण संस्कृति और सभ्यता के दृष्टिकोण बदल गये हैं। ये परिवर्तन केवल भारत में ही नहीं हुए हैं, बल्कि संसार के अन्य कई देशों में भी इन्होंने सामाजिक व्यवस्था में काफी परिवर्तन ला दिया है। इसी प्रकार की कुछ समस्याओं की इस नाटक में प्रमुखता है। यह नाटक समस्या-प्रधान कहा जायगा।

"कोणार्क" जगदीशचंद्र माथुर का तीन अंकों का ऐतिहासिक नाटक है। इसमें उड़ीसा के इतिहास-प्रसिद्ध कोणार्क के मंदिर के विषय में ऐतिहासिक आधार को लेकर कथानक का संयोजन किया गया है। इसकी कथावस्तु में यत्र-तत्र शिथिलता आ गयी है, जो कथोपकथन और संभाषण की कुशलता के कारण खटकती नहीं है। "अंजो दीदी" उपेंद्रनाथ अश्क का दो अंकों का मनोवैज्ञानिक-सामाजिक नाटक है। इसमें विश्लेषणात्मक आधार पर एक परिवार की दो पीढ़ियों की कथा कही गयी है। 'अलग-अलग रास्ते' में उन दो बहनों की कहानी कही है, जो दो भिन्न रास्तों पर चलती हैं। इसकी समस्या आज की प्रमुख सामाजिक समस्याओं में एक है। नाटककार की पैनी और तीखी मैली तथा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्रभावित करती है। अश्क का नया नाटक "अंधी गली" है। यह निम्न मध्यवर्गीय समाज के जीवन पर आधारित है। इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है—इसका नया शिल्प-विधान। इस नाटक के सभी अंकों को अलग-अलग स्वतन्त्र एकांकियों के रूप में भी खेला जा सकता है। इनकी कथा का क्रम सम्बद्ध होते हुए भी प्रत्येक अंक में पूर्ण है। इस दृष्टि से यह एक नया प्रयोग कहा जायगा। इसकी भाषा सीधी-सादी है। लेकिन उसके पीछे जो व्यंग्य है, वह हृदय को झकझोर डालता है। इस नाटक को अभिनेयता की दृष्टि से काफी सफल कहा जायगा। "अंधी गली"

एक नाटककार के रूप में अश्क के विकास का एक नया मोड़ कहा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त वृन्दावनलाल वर्मा और यशपाल का नाम अन्य श्रेष्ठ नाटककारों में लिया जाता है। नयी पीढ़ी के नाटककारों में लक्ष्मीनारायण लाल का नाम उल्लेखनीय है। उनका लिखा हुआ "अंधा कुआँ" अभिनेयता की दृष्टि से एक सफल नाटक कहा जायगा। यह नाटक ग्राम्य परिस्थितियों के आधार पर लिखा गया है।

एकांकी के जन्म के फलस्वरूप आधुनिक लेखकों का ध्यान नाटक की अपेक्षा एकांकी की ओर अधिक आकर्षित हुआ है, यही कारण है कि वर्तमान काल में नाटक के क्षेत्र में थोड़ी उदासीनता पायी जाती है, यद्यपि अब रंगमंच के पुनरुद्धार के साथ ही उसका भविष्य भी आशायुक्त जान पड़ता है।

हिन्दी एकांकी

हिंदी में एकांकी का इतिहास बीस-पच्चीस वर्षों से अधिक पुराना नहीं है, लेकिन इतनी छोटी अवधि में ही इसने हिंदी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। यों तो हिंदी-साहित्य में एकांकी का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से माना जाता है, किंतु उस समय के रूपकों आदि को एकांकी के अंतर्गत रखना उचित नहीं है। वे सामान्यतया केवल पढ़ने के लिये ही लिखे जाते थे, खेलने के लिये नहीं। इस प्रकार के एकांकी-लेखकों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, श्रीनिवास दास, बद्रीनारायण चौधरी "प्रेमघन", राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र आदि प्रमुख हैं।

वास्तव में हिंदी एकांकी का प्रारंभ जयशंकर "प्रसाद" के "एक घूंट" से हुआ है। "एक घूंट" बड़ा तीखा एकांकी है। इसे हिंदी एकांकी के क्षेत्र में सर्वप्रथम विशिष्ट प्रयोग कहा जा सकता है। "एक घूँट" के बाद भुवनेश्वर प्रसाद का "कारवाँ" प्रकाशित हुआ, जिससे हिंदी एकांकी में एक नया युग प्रारंभ हुआ। भुवनेश्वर ने अपने एकांकियों में प्राय: सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं को उठाया है। इन एकांकियों पर पाश्चात्य नाटकों का भी प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है। "कारवाँ" में छै एकांकी हैं—(१) "श्यामा", (२) "एक साम्यहीन साम्यवादी", (३) "शैतान", (४) "प्रतिमा का विवाह", (५) "रोमांस : रोमांच" और (६) "लाटरी" इनमें से "श्यामा" वैवाहिक विडंबना का चित्र है। "एक साम्यहीन

साम्यवादी" में उस व्यक्ति की झाँकी है, जो धनिकों का-सा जीवन बिताता है और साम्यवाद का समर्थक है। "शैतान" पर बर्नार्ड शा के "डेविल्स डिसाइपिल्स" का प्रभाव मिलता है। "प्रतिमा का विवाह" में विवाह और प्रेम का यथार्थ विरोध प्रकट हुआ है। "रोमांस : रोमांच" में सुधारवादी पाखंड पर आघात किया गया है। 'लाटरी" शीर्षक एकांकी में घटनाओं और वाक्-वैदग्ध का सम्मिलन है। भुवनेश्वर का एक और प्रसिद्ध एकांकी है, "ऊसर"। यह उनका सर्वश्रेष्ठ एकांकी समझा जाता है।

भुवनेश्वर के बाद डा० रामकुमार वर्मा का नाम आता है, जो हिंदी एकांकी के जन्मदाताओं में से एक माने जाते हैं। इनका सर्वप्रथम एकांकी "बादल की मृत्यु" है, जो सन् १९२७ में लिखा गया था। इसमें कथानक का प्रायः अभाव ही है। लेकिन वर्मा जी के बाद के एकांकियों में अधिक कलात्मकता पायी जाती है। उनका प्रथम एकांकी-संग्रह "पृथ्वीराज की आँखें" है। इसमें छै एकांकी हैं—(१) "चंपक", (२) "एक्ट्रेस", (३) "नहीं का रहस्य", (४) "बादल की मृत्यु", (५) "दस मिनट" और (६) "पृथ्वीराज की आँखें"। वर्मा जी के "रेशमी टाई" एकांकी-संग्रह में (१) "परीक्षा", (२) "रूप की बीमारी", (३) "१८ जुलाई की शाम", (४) "१ तोले अफीम की कीमत", (५) "रेशमी टाई" तथा "चारुमित्रा" नामक एकांकी-संग्रह में (१) "चारुमित्रा", (२) "उत्सर्ग", (३) "रजनी की रात" तथा (४) "अंधकार" नामक एकांकी संगृहीत हैं। इसके बाद उनके "विभूति", "सप्त किरण", "कौमुदी महोत्सव", तथा "रजत रश्मि" आदि कई एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए, लेकिन "चारुमित्रा" से अधिक प्रौढ़ उनमें से कोई नहीं है। वर्मा जी के एकांकियों के अधिकांश पात्र मध्यम वर्ग के हैं। उनके कई एकांकी हिंदी में अभिनव प्रयोग माने जाते हैं। उनके एकांकियों की सबसे बड़ी विशेषता उनका मार्मिक और हृदयस्पर्शी होना है।

जगदीशचंद्र माथुर का पहला एकांकी-संग्रह "भोर का तारा" है। इसमें उनके सन् १९३४ से लेकर ४३ के बीच में लिखे गये एकांकी संगृहीत हैं। रंगमंच की दृष्टि से इस संग्रह के सभी एकांकी सफल कहे जायेंगे। उनका नया एकांकी-संग्रह "ओ मेरे सपने" है, जिसमें पाँच एकांकी हैं—(१) "घोंसले", (२) "खिड़की की राह", (३) "कबूतर खाना", (४) "भाषण" और (५) "ओ मेरे सपने"। इन सभी एकांकियों में हास्य का अच्छा पुट है और शैली रोचक व प्रशंसनीय है। इन एकांकियों की सादगी और सहज गतिशीलता ने उनमें जहाँ प्रभावशीलता ला दी है, वहाँ वे अधिक रोचक भी हो गये हैं। उनमें कोई गूढ़ दर्शन आदि खोजना व्यर्थ होगा। ये एकांकी रोचक और मनोरंजक विषयों पर हल्की शैली में लिखे गये हैं। सरलता इनका मुख्य गुण है। इन सभी एकांकियों के पात्र प्राय: मध्य वर्ग के हैं। अभिनेयता की दृष्टि से भी ये सफल हैं। इनमें चरित्र-चित्रण सहज और स्वाभाविक हुआ है तथा कथोपकथन सरल हैं। सभी एकांकी तीखे व्यंग्य से युक्त और सरल अभिव्यंजना की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें लेखक ने अभिनय के लिये आवश्यक चित्र तथा निर्देश भी दिये हैं।

सेठ गोविंददास के एकांकियों की सबसे बड़ी विशेषता शिल्प और कथावस्तु का संतुलन है। वह प्रत्येक बात बहुत संतुलित ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। इसका फल यह होता है कि उनकी गंभीरता बनी रहती है और उनमें हलकापन नहीं आने पाता है। उनके अब तक तीन एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से "सप्त रश्मि" में (१) "धोखेबाज", (२) "कंगाल नहीं", (३) "वह मरा क्यों ?", (४) "अधिकार लिप्सा", (५) "ईद और होली", (६) "मानव मन" तथा (७) "मैत्री"; "एकादशी" में (१) "सच्चा धर्म", (२) "बाजीराव की तस्वीर", (३) "सच्ची पूजा", (४) "प्रायश्चित", (५) "भय का भूत", (६) "अलीबो-

गरीब मुलाकात" आदि तथा "पंच भूत" में (१) "जालौक और भिखारिणी", (२) चंद्रापीड़ और चर्मकार", (३) "शिवाजी का सच्चा स्वरूप", (४) "निर्दोष की रक्षा" तथा (५) "कृष्ण कुमारी" आदि एकांकी संगृहीत हैं। इनके सामाजिक एकांकियों की अपेक्षा ऐतिहासिक तथा पौराणिक एकांकी विशेष प्रभावपूर्ण बने हैं।

उपेंद्रनाथ "अश्क" का पहला एकांकी "पापी" सन् १९३७ में प्रकाशित हुआ था। उनके प्रारंभिक तीन एकांकी-संग्रह "देवताओं की छाया में", "तूफान से पहले" तथा "चरवाहे" आदि हैं। इनके एकांकियों में सामाजिक समस्याओं की प्रमुखता है। इनके पात्र प्रायः मध्यम वर्ग के हैं, जिन्हें पग-पग पर विभिन्न कष्टों का सामना करते रहना पड़ता है। इन्हीं समस्याओं को अश्क के एकांकियों का प्रमुख विषय कहा जा सकता है। पारिवारिक जीवन का यथार्थ चित्रण करना अश्क की मुख्य विशेषता है। उनके नये एकांकी-संग्रह "कैद और उड़ान" तथा "आदि मार्ग" हैं। इनके एकांकियों में पारिवारिक तथा वैवाहिक जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। पात्रों की सजीवता और व्यंग्यपूर्ण चरित्र-चित्रण इनकी दूसरी बड़ी विशेषता है। अभिनेयता का गुण इन सभी एकांकियों में मिलता है। "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ" में अश्क के सात प्रहसन हैं। ये प्रहसन तीखे व्यंग्य और हास्य से पूर्ण हैं। इनमें अभिव्यक्त सहज भावनाओं द्वारा सामाजिक यथार्थ की ओर संकेत किया गया है। वर्तमान काल की अनेक सामाजिक समस्याओं को इनमें उभारा गया है तथा विभिन्न नाटकीय तत्त्वों का समन्वय किया गया है, जो उन्हें पूर्णता की ओर बढ़ाते हैं।

उदयशंकर भट्ट का पहला एकांकी-संग्रह "अभिनव एकांकी" सन् १९४० में प्रकाशित हुआ था। "समस्या का अंत", "आदिम युग", "धूम शिखा", "स्त्री का हृदय", "चार एकांकी नाटक" तथा "अस्तोदय" आदि इनके अन्य एकांकी संग्रह हैं। "समस्या का अंत"

में नौ एकांकी संगृहीत हैं। ये सभी समस्यामूलक हैं और प्रायः सभी में मानव-जीवन की विविध समस्याओं को उठाया गया है और उनका हल ढूंढ़ने का प्रयत्न किया गया है। "पर्दे के पीछे" भट्ट जी का नया संग्रह है जिसमें उनके आठ एकांकी हैं। इनमें से प्रत्येक में किसी न किसी सामाजिक समस्या के विश्लेषण का प्रयत्न किया गया है। "उसके बाबूजी" तथा "अपनी-अपनी खाट पर" एकांकियों में तीखा व्यंग्य मिलता है। "पर्दे के पीछे' शीर्षक एकांकी में पूंजीवादी व्यवस्था का खोखलापन दिखाया गया है। "यह स्वतंत्रता का युग" शीर्षक एकांकी में नारी की स्वतंत्रता की भावना पर विचार किया गया है। इनका प्रधान स्वर यथार्थ सामाजिकता का है। इनमें जो समस्यायें उठायी गयी हैं उनका लेखक ने अपने दृष्टिकोण से विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। ये एकांकी लेखक के व्यापक अनुभव और सामाजिक चेतना का परिचय देते हैं। इनमें यह भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि आधुनिक भारतीय जीवन को पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने किस सीमा तक प्रभावित किया है। लेखक का दृष्टिकोण सामंजस्यवादी कहा जायगा।

विष्णु प्रभाकर ने सन् १९३९ से एकांकी लिखना आरंभ किया था। इस समय तक उनके कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। "इंसान और अन्य एकांकी" उनका प्रथम संग्रह है। इसका विषय सामाजिक है, जिसमें आधुनिक समाज-व्यवस्था का खोखलापन दिखाया गया है। उनके नये संग्रह "क्या वह दोषी था ?" में मनोवैज्ञानिक रेडियो-नाटक हैं, जिनका मुख्य गुण अभिनेयता है।

डॉ० प्रेमनारायण टंडन प्रौढ़ एकांकीकारों में हैं और दस-पंद्रह वर्षों से इस क्षेत्र में लिख रहे हैं। आपके चार एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—"प्रेरणा", "संकल्प", "कर्मपथ" और "दिवास्वप्न"। "प्रेरणा" आपका प्रथम एकांकी-संग्रह है, जिसमें (१) "माता", (२) "प्रेमी", (३) "कनवेंसिंग", (४) "प्रेरणा"

तथा (५) "बचपन के साथी" शीर्षक एकांकी हैं। इनमें से प्रथम दो अनुवादित तथा शेष मौलिक हैं। यह संग्रह सन् १९४५ में प्रकाशित हुआ था। इसके एक वर्ष बाद आपका दूसरा संग्रह "संकल्प" छपा, जिसमें (१) "अधूरा लेख", (२) "संकल्प", और (३) "गांधार पतन" शीर्षक एकांकी हैं। इनमें से प्रथम दो सामाजिक तथा अंतिम ऐतिहासिक है। सन् ५० में आपका तीसरा संग्रह "कर्म पथ" प्रकाशित हुआ। जिसमें "कर्म पथ", "रोगी के बच्चे", "लेखक की पत्नी" तथा "दंड" शीर्षक चार एकांकी हैं। "दिवास्वप्न और अन्य एकांकी" लेखक का नवीनतम संग्रह है, जिसमें "उपहार", "श्रमदान", "कृष्ण जन्म" तथा "दिवास्वप्न" शीर्षक एकांकी हैं। उपर्युक्त एकांकी-संग्रह जहाँ एक ओर एकांकीकार की प्रतिभा तथा कलात्मक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, वहाँ दूसरी ओर इस क्षेत्र में नवीन दृष्टिकोण को समावेशित करने के कारण भी।

गणेशप्रसाद द्विवेदी का "सोहाग बिंदी और अन्य नाटक" नाम से एक एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुआ था। इनकी मुख्य विशेषता यह है कि यह अपने एकांकियों में कथानकों का निर्माण विशेष कुशलता पूर्वक करते हैं। अँग्रेजी नाट्य-साहित्य से भी यह विशेष प्रभावित हुए हैं। इनके एकांकियों में विचारों की संबद्धता भी भली प्रकार से प्रकट हुई है।

उपर्युक्त एकांकीकारों के अतिरिक्त इस समय हिंदी में और भी बहुत-से एकांकीकार हैं, जो इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। इनमें भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, भारतभूषण अग्रवाल, धर्मवीर भारती, विश्वंभर मानव, कृष्णचंद्र, सिद्धनाथ कुमार, गोपीकृष्ण गोपेश, त्रिलोकीनारायण दीक्षित तथा कर्तारसिंह दुग्गल आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिंदी साहित्य में एकांकी ने इतने कम समय में जो प्रगति की है, वह उसके उज्ज्वल भविष्य की द्योतक है। आज एकांकी की माँग हिंदी में बढ़ रही है और इस क्षेत्र में अनेक नये प्रयोग किये जा रहे हैं। उसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता देखकर भी इस बात की आशा की जा सकती है कि हिंदी का एकांकी स्थायी साहित्य में शीघ्र ही अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लेगा।

हिन्दी निबन्ध

आधुनिक हिंदी निबंध का प्रारंभ भारतेंदु-युग से माना जाता है। भारतेंदु-युग में हरिश्चंद्र के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, बदरी नारायण चौधरी "प्रेमघन", अंबिकादत्त व्यास तथा राधाचरण गोस्वामी आदि श्रेष्ठ निबंध लेखक थे। हिंदी-निबंध के क्षेत्र में एक प्रकार से इन लोगों ने उसका प्रारंभिक रूप स्थिर करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। विविध विषयों पर लिखे गये इनके निबंध साहित्यिक तथा कलात्मक दृष्टि से काफी महत्व रखते हैं। सामान्य रूप से इन लेखकों के निबंधों के विषय धार्मिक पाखंड, सामाजिक कुरीतियाँ, राजनैतिक सुधार, धार्मिक अंधविश्वास, कला, समाज व संस्कृति आदि थे।

द्विवेदी-युग में भी निबंध-साहित्य की कम उन्नति नहीं हुई। महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, चन्द्रधरशर्मा "गुलेरी", अध्यापक पूर्णसिंह तथा अन्य अनेक निबंध लेखक इस युग में हुए जिन्होंने हिंदी निबध की परंपरा को आगे बढ़ाने में योग दिया। विषय की दृष्टि से भारतेंदु-युग और द्विवेदी-युग के निबंधों में थोड़ा साम्य मिल जायगा। विचारधारा और साहित्यिकता की दृष्टि से इनमें काफी अन्तर है।

वर्तमान निबंध लेखकों में गुलाबराय का नाम सबसे पहले आता है। यह प्रवृत्ति के अनुसार द्विवेदी-युग के निबंध-लेखक हैं

इनके निबंध संग्रह "फिर निराशा क्यों ?" तथा "मेरी असफलतायें" हैं। इनमें से प्रथम में मनोवैज्ञानिक निबंधों की संख्या अधिक है तथा द्वितीय में विनोदपूर्ण और हलकी-फुलकी शैली में लिखे गये संस्मरणात्मक निबंधों की। गुलाबराय के निबंधों की विशेषता भाषा-शैली की स्पष्टता और सरलता है। इनके निबंधों में से व्यंग्यात्मक शैली का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है-- "खैर, आजकल उस (भैंस) का दूध कम हो जाने पर भी और अपने मित्रों को छाछ न पिला सकने की विवशता की झूँझल होते हुए भी (सुरराज इन्द्र की तरह मुझे भी मठा दुर्लभ हो जाता है--तक्र शक्रस्य दुर्लभम्) उसके लिये भुस लाना अनिवार्य हो जाता है। कहाँ साधारणीकरण और अभिव्यंजनावाद की चर्चा और कहाँ भुस का भाव। भुस खरीदकर मुझे भी गधे के पीछे ऐसे ही चलना पड़ता है, जैसे बहुत से लोग अकल के पीछे लाठी लेकर चलते हैं। कभी-कभी गधे के साथ कदम मिलाये रखना कठिन हो जाता है। लेकिन मुझे गधे के पीछे चलने में उतना ही आनन्द आता है जितना कि पलायनवादी को जीवन से भागने में। बहुत से लोग तो जीवन से छुट्टी पाने के लिये कला का अनुसरण करते हैं, किंतु मैं कला से छुट्टी पाने के लिये जीवन का अनुसरण करता हूँ--कभी लढ़ी नाव पर, कभी लढ़ी पर नाव।"

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के निबंध-संग्रहों में "पंचपात्र", "त्रिवेणी" तथा "कुछ" उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध प्रायः विवेचनयुक्त और विचारात्मक होते हैं। भावों की स्पष्टता और सरल अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक उदाहरण देखिये--"सबसे पहले विज्ञान ने मनुष्य को 'सत्य के लिये सत्य की खोज' करना सिखा दिया है। विज्ञान ने हमको यह पाठ पढ़ा दिया है कि एक ही नियम इस अनन्त ब्रह्मांड में व्याप्त है। विज्ञान ने मनुष्य को उस ईश्वर के दर्शन और अनुभव करने की शक्ति दी है, जिसकी

इच्छा और ब्रह्मांड की घटनाओं में सर्वथा एकता है। विज्ञान के कारण हमारे अंतःकरण से उस ईश्वर की प्रतिष्ठा हटती जाती है, जो मनमाने खेल-तमाशे किया करता था, जो सांसारिक प्राणियों की तरह राग-द्वेष या हृष-शोक के झंझट में बसा रहा था। विज्ञान ने मनुष्य के सामने ब्रह्मांड की अनन्तता खोलकर रख दी है। इस अनन्त ब्रह्मांड में उसकी और उसके झोपड़े की क्या स्थिति है, इस पर विचार करते ही, उसका अज्ञान-जनित मिथ्या गर्व चकनाचूर हो जाता है। साथ ही विज्ञान ने यह बतलाकर मनुष्य के सच्चे आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की नींव डाल दी है कि मनुष्य किस अवस्था से उन्नत होकर किस अवस्था को पहुँच गया है, वह पशु-कोटि से उठकर मनुष्य-कोटि में किस प्रकार पहुँचता है। विज्ञान ने अनेक प्रकार के दुखों का विश्लेषण किया है। उससे मनुष्य को विज्ञानातीत धार्मिक व्याख्याओं की अपेक्षा आशावादी बनने में अधिक सहायता मिलती है। किसी वैज्ञानिक ईश्वरवादी को वैसी घबराहट कदापि नहीं हो सकती, जैसी कूपर सरीखे धर्म-निष्ठ विद्वान को स्वेच्छाचारी ईश्वर से हुआ करती थी।" बख्शी जी के निबंधों के विषय प्रायः समाज, साहित्य, धर्म और विज्ञान आदि हैं। उनकी शैली की मुख्य विशेषता उसकी रोचकता है, जिसमें कहीं-कहीं व्यंग्य का पुट भी होता है।

भदंत आनंद कौसल्यायन के निबंध संग्रह "जो न भूल सका", तथा "रेल का टिकट" आदि हैं। "जो न भूल सका" में संस्मरणात्मक निबंध तथा "रेल का टिकट" में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा विचारात्मक निबंध हैं। कुछ निबंध समस्या-प्रधान भी हैं, जिनमें लेखक ने सांस्कृतिक और राजनैतिक प्रश्नों को उठाया है। संस्मरणात्मक निबंध भी इन्होंने लिखे हैं। इनकी प्रमुख विशेषता सूक्ष्म और गहन दृष्टि-संपन्नता है। इनके निबंधों में पूँजीवादी विचारधारा का विरोध किया गया है। "जो न भूल सका" से

एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—"जब से समाज विकसित होकर इस योग्य हुआ कि उसमें कुछ लोगों के लिये पुरोहितशाही पेशा बन सके, तब से जिस-जिस समय में समाज में जिस-जिस वर्ग के हाथ में शक्ति रही, पुरोहितशाही हर बात में उसी वर्ग का समर्थन करती रही। आज रूस को छोड़कर संसार के सभी देशों में पूंजीवाद का बोलबाला है, इसलिये इस युग के पुरोहित—वे किसी भी धार्मिक संप्रदाय के हों—पूंजीवाद के समर्थक हैं। जो पूंजीपति दूसरों की पसीने की मेहनत को लूटकर अपनी तिजोरी भरे हुये हैं, उस पूंजीपति की इस कमाई को पुरोहितशाही कहती है कि यह "खुदा की बरकत है", "ईश्वर की कृपा है" और नहीं तो "उनके अपने कर्मों का फल है"। अंतिम व्याख्या से हम भी कुछ-कुछ सहमत हैं। फर्क इतना ही है कि "कर्मों के फल" का अर्थ हम समझते हैं—"कुकर्मों का फल।"

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध-संग्रहों में "विचार और वितर्क", "कल्पलता" तथा "अशोक के फूल" आदि प्रमुख हैं। "विचार और वितर्क" में अट्ठाइस निबंध हैं, जो भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखे गये हैं। "कल्पलता" में बीस निबंध हैं, जिनमें से कुछ वैयक्तिक हैं। ये निबंध ज्ञान-विकास की दृष्टि से विशेष उपयोगी हैं। इस संग्रह के अधिकांश निबंधों की शैली में एक प्रकार की सहज स्वाभाविकता मिलती है। इस संग्रह का एक विशिष्ट निबंध "साहित्य का नया कदम" है। इसमें हिंदी के नये साहित्य की गतिविधि पर सुलझे हुये विचार मिलते हैं। इसमें कई साहित्यिक वादों को कसौटी पर कसने की चेष्टा संतुलित ढंग से की गई है। पांडित्यपूर्ण शैली में लिखा गया यह निबंध विवेचनाप्रधान है। "अशोक के फूल" के निबंध बहुत ही सरल भाषा-शैली में लिखे गये तथा रोचक हैं। कहीं-कहीं हास्य का पुट भी इनमें मिलता है। न निबंधों के विषय मुख्यतया साहित्य, संस्कृति तथा समाज

आदि हैं। डॉक्टर द्विवेदी की निबंध-शैली का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—"सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को केन्द्र बनाया और निर्गुण उपासना ने योगियों अर्थात् नाथ-पंथी साधकों के निर्गुण परब्रह्म को। पहली साधना ने हिंदू-जाति की बाह्याचार की शुष्कता को आन्तरिक प्रेम से सींचकर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया, दूसरी ने विद्रोह का; एक ने शास्त्र का सहारा लिया, दूसरी ने अनुमान का; एक ने श्रद्धा को पथ-प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को; एक ने सगुण भगवान को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण भगवान को, पर प्रेम दोनों का ही मार्ग था, सूखा ज्ञान दोनों को ही अप्रिय था, केवल बाह्याचार दोनों में से किसी को संभव नहीं था। आन्तरिक प्रेम-निवेदन दोनों को इष्ट था, अहैतुक भक्ति दोनों की काम्य थी, आत्मसमर्पण दोनों के साधन थे। भगवान की लीला में दोनों ही विश्वास करते थे। दोनों ही का अनुभव था कि भगवान लीला के लिये इस जागतिक प्रपंच को सम्हाले हुये हैं। पर प्रधान भेद यह था कि सगुण भाव से भजन करने वाले भक्त भगवान् को अलग रखकर देखने में रस पाते रहे, जब कि निर्गुण भाव से भजन करने वाले भक्त अपने-आप में रमे हुये भगवान को ही परम काम्य मानते थे।"

शांतिप्रिय द्विवेदी के निबंध "पथ-चिह्न", "परिव्राजक की कथा", "धरातल", "साकल्य" तथा "प्रतिष्ठान" आदि संग्रहों में मिलते हैं। इनमें से अंतिम में उनके संस्मरणात्मक तथा साहित्यिक विवेचना-प्रधान निबंध हैं। "पथ-चिह्न" में संस्मरणात्मक आलोचनात्मक निबंधों को संगृहीत किया गया है। द्विवेदी जी ने इन बिविध विषयों पर लिखे हुये निबंधों में कला, संस्कृति और साहित्य पर अपने विचार प्रकट किये हैं। इन निबंधों में रोचकता की कमी

है, यद्यपि यह कहना गलत होगा कि इनमें किसी सत्य की व्याख्या नहीं की गयी है। "पथ-चिह्न" में कला और संस्कृति पर दो विचार-प्रधान निबंध हैं, जिनमें लेखक ने साहित्यकारों के कर्तव्यों को स्पष्ट किया है, तथा उन्हें कुछ सुझाव भी दिये हैं। द्विवेदी जी की शैली का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—"आज जीवन दुष्काल-पीड़ित है, फलतः हम पग-पग पर अपनी आत्मा को कन्या-विक्रय की भाँति ही बेचकर किसी तरह गुजर-बसर कर रहे हैं। सच तो यह है कि सम्पन्न वर्ग के पैशाचिक सुखों के लिये हम सभी का जीवन वेश्या बन गया है। सौन्दर्य बेचनेवाली वेश्यायें तो हमारी ढकी हुई सामाजिक परिस्थितियों की बाहरी साइनबोर्ड मात्र हैं। अब तक का सामाजिक और राजनीतिक इतिहास युगों की हमारी कुरूपता का अलबम है। परिस्थितियों के स्पष्टीकरण के लिये मोटी-मोटी पोथियों और बड़ी-बड़ी गवेषणाओं की उतनी जरूरत नहीं है, जितनी अपने सामने के साक्षात दृष्टांतों को देख लेने की।"

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के निबंध संग्रहों में "कला और संस्कृति", "माताभूमि" तथा "पृथ्वीपुत्र" का नाम उल्लेखनीय है। इनके निबंध प्रायः भावात्मक और विश्लेषणात्मक होते हैं। गंभीर विचारों को भी सरल भाषा और सुबोध शैली में अभिव्यक्त करना डा० अग्रवाल की प्रमुख विशेषता है। आपकी शैली का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—"शब्द है और शब्द के पीछे उसका सत्य स्वरूप अर्थ है। केवल शब्द रटो, अल्प फल हैं। शब्द के साथ उसके अर्थ से टक्कर लेने का ऋजु प्रयत्न करो, महती समप्राप्ति हैं। उससे इसका अनुभव होगा। इसका स्वाद लेना योग है। रस योगियों का याम है। योगी अर्थ के साथ जूझते हैं, पण्डित शब्दार्थ के साथ। इसलिये पण्डित के भाग में तत्व ही आया। योगी रस पी रहे हैं, पण्डित छाछ पीकर रह गये। पण्डित के सामने शब्द आया—"सविता"। शब्द की बाहरी परिधि में घूमघामकर पण्डित

ने संतोष माना। सविता कहाँ है ? क्या है ? इस अर्थ को जिसने जाना, वह योग की ओर बढ़ा। मन को अर्थ के साथ बार-बार टकराओ। बिजली की परस्पर चटचटाती हुई ऋणधन जिह्वाओं की तरह शब्द को अर्थ की सन्निधि में लाकर स्फुरित करो। वहीं अमृत स्वाद रस और आनन्द है।"

जैनेंद्रकुमार के निबंध-संग्रह "मंथन", "काम, प्रेम और परिवार", "साहित्य का श्रेय और प्रेय" तथा "पूर्वोदय" आदि हैं। इनमें से अंतिम सांस्कृतिक निबंधों का संग्रह है। इन निबंधों से लेखक की चिंतनशीलता का परिचय मिलता है। इनकी शैली में स्वाभाविकता है। "पूर्वोदय" के अधिकांश निबंध वैयक्तिकता की भावना से पूर्ण हैं। लेखक के गाँधीवादी विचार भी इसमें मिलते हैं। जैनेंद्र जी ने प्रश्नोत्तर शैली में भी बहुत से निबंध लिखे हैं, जिनमें रोचकता अपेक्षाकृत अधिक है। इनकी शैली का एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—"मानव-समाज को स्वीकार करने के लिये क्या शेष प्रकृति को इन्कार करना होगा ? अथवा कि प्रकृति में तन्मयता पाने के लिये मनुष्य-संपर्क से भागना पड़ेगा ? दोनों बातें गलत हैं। धर्म सम्मुखता है। हम उधर मुँह रखें अवश्य, जहाँ वह इन्सान है, जो परिश्रम में चूर-चूर हो रहा है, देह से दुबला है और दूसरों के समस्त अनादर का बोझ उठाये हुये झुका हुआ चल रहा है। हम उधर देखें जहाँ पुरुष को इसलिये कुचला जाता है कि दानव मोटा रहे। पीड़ित मानव-समाज की ओर हम उन्मुख रहें। अपने सुख का आत्म-विसर्जन करें, उनकी वेदना में साझा बटायें। यह सब तो हम करें ही, करेंगे ही। अन्यथा हमारे लिये मुक्ति कहाँ है ? पर ध्यान रहे, मानव-समाज पर जगत का खात्मा नहीं है। उनसे आगे होकर भी सत्य है। वहाँ भी मनुष्य की गति है। वहाँ भी मनुष्य को पहुँचना है। और इस जगह पर आकर मैं कहूँ कि अरे, जो चाँद-तारों के गीत गाता है, उसे क्या

वह गीत नहीं गाने दोगे ? उन गीतों में संसार के गर्भ से ली गयी वेदना को अपने मन के साथ घनिष्ठ करके वह गायक गीत की राह मुक्त कर दे रहा है। उसको क्या प्रस्ताव से और कानून से रोकोगे? रोको, पर यह शुभ नहीं है। अरे, उस कवि को क्या कहोगे, जो आसमान को शून्य-दिगम्बर देखता है, कुछ क्षण उसमें लीन रहता है और उस लीनता के परिणाम में सब वैभव का बोझ अपने सिर से उतार कर स्वयं निरीह बन जाता है और मस्ती के गीत गाता है ? कहे, राजनीतिक उसे पागल, पर वह लोक-हितैषी है। उसका प्रयोजन हिसाब की बही में न आवे, पर प्रयोजन उसमें है और वह महान् है।"

"गेहूँ और गुलाब" तथा "माटी की मूरतें" आदि में रामवृक्ष बेनीपुरी के निबंध तथा स्केच आदि संगृहीत हैं। इनमें के बहुत से निबंध भावना-प्रधान हैं, जिन्हें लेखक ने शब्द-चित्र कहा है। इनकी शैली की मुख्य विशेषता उसकी भावमयता है। इस दृष्टि से वास्तव में बेनीपुरी जी के निबंधों का बहुत महत्व है। इस शैली का एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—"सामने जहाँ तक नजर जाती है, समुद्र ही समुद्र है। उसमें ज्वार आया है। बड़ी-बड़ी तरंगें उठतीं, एक-दूसरे से टकरातीं, फेन उड़ातीं, गर्जन करतीं, आगे बढ़तीं और बाँध पर सिर पटक कर फिर लौट आतीं। ऊपर जो पूर्णचंद्र आधी रात तय करके सर पर खड़ा मुस्करा रहा है, उसकी मुस्कराहट उन तरंगों पर अठखेलियाँ कर रही है। कभी-कभी मालूम होता है, किसी अदृश्य छोर को पकड़ कर शत-सहस्र ज्योत्स्ना-कुमारियाँ चन्द्रमण्डल से एक-एक कर उतर रही हैं और आकुल-व्याकुल समुद्र की इन तरंग-मालाओं के कंपित अधरों को चूम-चूमकर अट्टहास कर उठती हैं। इन चुंबनों की मादकता से मतवाली बनी तरंगें अपने आप में नहीं समातीं, समुद्र को नीचे छोड़कर ऊपर उड़ना चाहती हैं, किंतु उड़ नहीं पातीं, फलतः बार-बार मूर्च्छित होकर, हाहा

खाकर गिर-गिर पड़तीं और फिर ज्यों ही होश में आतीं, वै ही निष्फल चेष्टायें। स्वभावतः ही ज्योत्स्ना-कुमारियों को इसमें मज़ा मिल रहा है, वे भी इस तड़पन का तमाशा देखने को बार-बार चुंबनों की वर्षा भी किये जा रही हैं।"

सियारामशरण गुप्त ने गाँधीवाद तथा ईश्वर में विश्वास आदि विषयों पर कुछ निबंध लिखे हैं। ये निबंध काफी तीखे और मार्मिक हैं। "दिनकर" के निबंध "नीम के पत्ते" में संगृहीत हैं। मुनि कांतिसागर के कला, पुरातत्व तथा यात्रा संबंधी निबंध "खोज की पगडंडियाँ" में मिलते हैं। प्रभाकर माचवे तथा नामवर सिंह के निबंध क्रमशः "खरगोश के सींग" और "बकलम खुद" में मिलते हैं। गोपालप्रसाद व्यास ने "मैंने कहा" नामक संग्रह में सटायर से मिलते-जुलते हास्य-प्रधान निबंध लिखे हैं। इनमें आत्मचरितात्मक शैली में लिखे गये निबंध विशेष सफल हैं। कहीं-कहीं भाषा भावों के अनुरूप नहीं बन पायी है। देवेंद्र सत्यार्थी के निबंध "क्या गोरी क्या साँवरी" तथा "रेखायें बोल उठीं" में संगृहीत हैं। लेखक ने इनके विषय में यह दावा किया है कि उसने निबंध के क्षेत्र में एक बिल्कुल नया प्रयोग किया है। रोचकता और सहज स्वाभाविकता इन निबंधों के विशेष गुण हैं। शैली आकर्षक तथा मनोरंजक है। ये निबंध रेखाचित्र से मिलते-जुलते हैं। भगवतीशरण सिंह के निबंध "मानव के मूल में" नामक पुस्तक में संगृहीत हैं। व्यक्तिगत निबंधों की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण प्रयत्न कहा जायगा। शिवनाथ के निबंधों का संग्रह "मीमांसिका" है। इसमें सभ्यता और संस्कृति विषयक अठारह निबंध हैं। लेखक का अनुमान है कि आज संस्कृति में सांप्रदायिकता की भावना बढ़ती जा रही है। इस कारण उसका विकास नहीं हो रहा है, वह विकृत होती जा रही है और मृतप्राय है। आज यह कटु लेकिन ऐतिहासिक सत्य है। लेखक ने सभ्यता और संस्कृति का अंतर स्पष्ट किया है। उसने यह भी बताया है

कि जन साहित्य या जन कला के उदाहरण-स्वरूप जो साहित्य सामने आ रहा है, वह अपेक्षाकृत निम्न स्तर का है। विद्यानिवास मिश्र के निबंध संग्रह "छितवन की छाँह" तथा "कदम की फूली डाल" आदि हैं। इनके विषय प्रायः साहित्य, कला व संस्कृति हैं। उपर्युक्त निबंधकारों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में डा० रघुवीर सिंह, डा० नगेंद्र, प्रभाकर माचवे, यशपाल, रावी, "उग्र", हरिशंकर शर्मा तथा राहुल सांस्कृत्यायन आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिंदी के निबंध-साहित्य के विकास को देखने से यह ज्ञात होता है कि हिंदी निबंध का जो आधुनिक रूप निर्मित हुआ है, वह प्रधानतः पाश्चात्य पर आधारित है। कम से कम साहित्यिक और कलात्मक निबंधों का विकास हिंदी में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव-स्वरूप ही हुआ। हिंदी निबंध के प्रारंभिक काल में जो शैली मिलती है, वह धीरे-धीरे परिष्कृत होती जाकर आगे के युगों में विकास को प्राप्त होती दिखायी देती है। हिंदी की इस प्रारंभिक शैली का परिष्कार करने वालों में सबसे उल्लेखनीय नाम भारतेंदु युगीन दो निबंधकारों---बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र--का है। अवश्य इन दोनों विद्वानों के विचारों पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव है, परन्तु उनकी स्वाभाविक और सुरुचिपूर्ण शैली उनकी अपनी विशेषता कही जायगी।

विषय की दृष्टि से भारतेंदु युग के निबंध साहित्य तथा भारतेंदु के परवर्ती निबंध साहित्य में काफी भिन्नता पायी जाती है। संक्षेप में यह कहा जायगा कि भारतेंदु-युगीन निबंध-साहित्य का विषय-विस्तार बहुत अधिक नहीं था और वह एक सीमित क्षेत्र के विषयों पर ही आधारित था। वर्गीकरण करके देखा जाय तो पता चलेगा कि इन निबंधों के विषय प्रायः धर्म, साहित्य और समाज आदि थे। सांस्कृतिक जीवन के अन्य पक्षों पर न लिखकर ये निबंधकार प्रायः किन्हीं सामान्य विषयों पर ही लिखना अधिक

पसंद करते थे। परन्तु आधुनिक निबंध का विस्तार विषय की दृष्टि से बहुत अधिक है। यही नहीं, अनेक विषयों पर आधुनिक युग में जो निबंध लिखे गए हैं, वे प्रायः वैज्ञानिक विवेचना से युक्त हैं और साहित्य में उनका स्थायी महत्व है। जब से आत्मचरितात्मक निबंध बहुलता से लिखे जाने लगे तब से उनका निबंधकार के व्यक्तित्व-विकास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान हो गया और अब यह आशा की जा सकती है कि भविष्य में इसका क्षेत्र-विस्तार और भी बढ़ सकेगा।

हिन्दी आलोचना

हिन्दी की नयी समीक्षा के प्रवर्तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहे जाते हैं। शुक्ल जी का व्यक्तित्व आधुनिक आलोचकों में सबसे महान है। उन्होंने एक प्रकार से हिन्दी समीक्षा को नया मार्ग प्रदान किया। भारतीय आलोचना-पद्धति के समर्थक होते भी उनकी व्याख्या नवीनता से युक्त है। उन्होंने समीक्षा की शैली का पुर्ननिर्माण किया। उनकी शैली की विशेषतायें गहरी पकड़, तीव्र दृष्टि, रोचकता, तथा विषय–विश्लेषण की क्षमता हैं। उन्होंने हिन्दी में सर्वप्रथम गहन विवेचना से पूर्ण बनाकर आलोचना का क्षेत्र व्यापक किया।

वर्तमान आलोचकों में गुलावराय का स्थान काफी ऊँचा है। उनके आलोचना-ग्रंथ "नव रस", 'सिद्धांत और अध्ययन', "काव्य के रूप", "हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास", "हिंदी काव्य विमर्श", "प्रसाद की कला", तथा "प्रबंध प्रभाकर" आदि हैं। इनमें से प्रथम तीन सैद्धांतिक तथा अंतिम को छोड़कर शेष व्यावहारिक आलोचना से संबंधित हैं। "सिद्धांत और अध्ययन" में उन्होंने साधारणीकरण की विवेचना उसकी परंपरागत धारणाओं के अनुसार की है। कहीं-कहीं इस विषय पर उनके विचार कतिपय अन्य समकालीन आलोचकों से भिन्न हैं। उन्होंने लिखा है—"......व्यक्ति कुछ समान धर्मों की ही प्रतिष्ठा के कारण नहीं वरन् अपने पूर्ण व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा में सहृदयों का आलं-

बन बनता है। साधारण (पतिव्रत) की प्रतिष्ठा तो सीता और डेसडीमोना में कुछ-कुछ एक-सी है, किंतु उनका व्यक्तित्व भिन्न है। कृष्ण की अनन्यता के साधारण धर्म में सूर और नंददास की गोपियाँ एक-सी हैं, किंतु ऊधो के साथ बातचीत तथा व्यवहार में वे भिन्न हैं। अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ वे हमारी रसानुभूति का विषय बनती हैं। हमारी समस्या इस बात की है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व बनाये रखते हुए हम उसे किस प्रकार रसानुभूति का विषय बना सकते हैं। साहित्य में, चाहे वह पाश्चात्य हो और चाहे भारतीय, व्यक्तित्व का विशेष मान है। दमयंती नल को ही वरण करना चाहती है, देवताओं को नहीं। व्यक्तित्व को खोकर साधारण गुणों मात्र से काम नहीं चल सकता। किंतु हाँ, भोजकत्व के लिये अपने-पराये के संबंध में मुक्त होना आवश्यक है।"

भाव की विवेचना करते हुये गुलाबराय जी ने लिखा है—"भाव मन में रहते हैं। हाव वे भाव हैं, जिनका भृकुटि, नेत्रादि, द्वारा वाह्य व्यंजन होता है। नायिका आलंबन भी हो सकती है और आश्रय भी। नायिका को यदि आश्रय माना जाय, तब तो यह अनुभाव ही है, किंतु वह आश्रय रहती हुई भी नायक के लिये आलंबन बन सकती है। इस दृष्टि से आलंबन की चेष्टा होने के कारण ये उदाहरण के अंतर्गत गिने जाने चाहिये।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के समीक्षा-ग्रंथ "हिंदी साहित्य की भूमिका", "हिंदी साहित्य का आदि काल", "साहित्य का मर्म" "हिंदी साहित्य" तथा "कबीर" आदि हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी की एक आलोचक के रूप में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने हिंदी आलोचना को एक नयी और संतुलित दृष्टि दी है, जिसमें वैज्ञानिकता का भी अभाव नहीं है। उनका मानववादी दृष्टिकोण उनकी अनेक रचनाओं में अभिव्यक्त हुआ है। "साहित्य

का मर्म" में मानवता के विषय में उनके जो विचार मिलते हैं, वे काफी महत्व के हैं। उन्होंने लिखा है—"जो जैसा है उसे वैसा ही मान लेना मनुष्य-पूर्व जीवों का लक्षण था, पर जो जैसा है, वैसा नहीं बल्कि जैसा होना चाहिये वैसा करने का प्रयत्न मनुष्य की अपनी विशेषता है। इसमें प्रयत्न की आवश्यकता होती है, प्रयत्न करना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। लोभ सहजात मनोवृत्ति है, वह पशु और मनुष्य में समान है। पर औदार्य, पर-दुख-संवेदन उसमें नहीं होते, यह मनुष्य की अपनी विशेषता है। इसी प्रकार आहार, निद्रा आदि पशु-सामान्य धरातल से जो ऊपर की चीज है, जो संयम से, तप से, औदार्य से और त्याग से प्राप्त होती है वह मनुष्य की अपनी विशेषता है। यही मनुष्य की मनुष्यता है। फिर मनुष्य प्रकृति के नियमों का विश्लेषण करता है और इस प्रकार उनका उपयोग करता है कि जिससे वह नयी सृष्टि कर सके। कल्पना, औदार्य, और संयम मनुष्यता है और इसके विरुद्ध जाने वाले मनोभाव मनुष्यता नहीं हैं।"

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के समीक्षा-ग्रंथ "हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी", "जयशंकर प्रसाद","सूरदास" "आधुनिक साहित्य" तथा "नया साहित्य : नये प्रश्न" आदि हैं। "जयशंकर प्रसाद" में प्रसाद जी की कविता, नाटक तथा उपन्यास आदि पर लिखे गये निबंध संगृहीत हैं। "सूरदास" में उन्होंने रास-वर्णन के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं। उन्होंने लिखा है—"रास की वर्णना में सूरदास जी का काव्य परिपूर्ण आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँच गया है। केवल श्रीमद्भागवत की परंपरागत अनुकृति कवि ने नहीं की है, वरन् वास्तव में वे अनुपम आध्यात्मिक रास से विमोहित होकर रचना करने बैठे हैं। उन्होंने रास की जो पृष्ठभूमि बनाई है, जिस प्रशांत समुज्ज्वल वातावरण का निर्माण किया है, पुनः रास की जो सज्जा, गोपियों का जैसा संगठन और कृष्ण की ओर सबकी दृष्टि

का केंद्रीकरण कराया है और रास की वर्णना में संगीत की तल्लीनता और नृत्य संबंधी गीत के साथ एक जागरूक आध्यात्मिक मूर्च्छना अपूर्व प्रसन्नता के साथ प्रशांति और दृश्य के चटकीलेपन के साथ भावना की तन्मयता के जो प्रभाव उत्पन्न किये गये हैं, वे कवि की कुशलता और गहन अंतर्दृष्टि के द्योतक हैं।"

वाजपेयी जी प्रयोगवाद के प्रारंभ से ही उसके कटु आलोचक रहे हैं। "आधुनिक साहित्य" में उन्होंने इसके संबंध में लिखा है– "प्रयोगवाद के लिए मेरी चौथी पुस्तक में एक भी संवर्धना का शब्द नहीं है, बल्कि ऐसी तीव्र समीक्षा है जिससे बहुत से प्रयोगवादी तिलमिला उठे हैं। कुछ ने सफाई देने की कोशिश की है तथा एक महाशय ने उस निबंध को मेरा बचकाना प्रयास माना है। "तार सप्तक" के सप्त महारथियों के लिये मेरी उस निबंध की दुर्धरता सचमुच अभिमन्यु का बचकाना प्रयास ही है, खैरियत यह हुई कि अहिंसात्मक युद्ध किसी के सिर नहीं बीता, पर हृदय-परिवर्तन बहुतों का हुआ है। बहुत से प्रयोगवादी नये सिरे से समझदार हो गये हैं और कई तो खेमा छोड़कर बाहर चले गये हैं।"

वाजपेयी जी की नयी समीक्षा-पुस्तक "नया साहित्य : नये प्रश्न" में पाँच खंड हैं--निकष, विवेचन और निरूपण, वार्ताएँ और वक्तव्य आदि। दो दार्शनिक निबंधों तथा आत्मसमीक्षात्मक अंश को छोड़कर प्रायः संपूर्ण पुस्तक में लेखक ने नये साहित्य के विभिन्न अंगों को नये यथार्थवादी दृष्टिकोण से परखने की चेष्टा की है। प्रसाद, पंत, निराला, जगन्नाथदास रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, साकेत आदि विविध कवियों-आलोचकों-कृतियों पर लिखे गये उनके निबंध उनकी सूक्ष्म दृष्टि-संपन्नता के परिचायक हैं।

प्रगतिशील आलोचकों में डॉ० रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, डॉ० रांगेय राघव, अमृत राय, प्रकाशचंद्र गुप्त

विजयशंकर मल्ल तथा नामवर सिंह आदि का नाम उल्लेखनीय है। डॉ० शर्मा के प्रगतिशील साहित्य पर प्रकट किये गये विचार महत्वपूर्ण हैं। उनका विचार है कि प्रगतिशील साहित्य से उस साहित्य से मतलब है जो समाज को आगे बढ़ाता है तथा मनुष्य के विकास में सहायक होता है। प्रगतिशील होने से ही साहित्य श्रेष्ठ नहीं हो जाता। उनके विचार से साहित्य में समाज-कल्याण की भावना होना आवश्यक है। उन्होंने लिखा है--"मेरा उन लोगों से मतभेद है जो साहित्य को समाज हित या अहित से परे मानकर केवल रूप की प्रशंसा करके आलोचना की इति कर देते हैं। उनके लिये बिहारी और तुलसीदास दोनों ही समान रूप से वंदनीय हैं और दोनों की ही परंपरा समान रूप से वांछनीय है। प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन करते हुये मेरी दृष्टि में समाज के हित और अहित को नहीं भूल जाना चाहिये। यदि दरबारों में राजाओं की चाटुकारिता करते हुये भी श्रेष्ठ साहित्य रचा जा सकता था तो इसे संत कवियों की सनक ही माननी चाहिये कि वे दरबारों में आनंदपूर्वक समय न बिताकर चिमटा बजाते हुये रूढ़िवादियों का विरोध सहन करते रहे।"

शिवदानसिंह चौहान का व्यक्तित्व प्रगतिशील आलोचकों में सबसे अधिक प्रभावशाली है। प्रगतिशील साहित्य का कार्य उनके अनुसार यह होना चाहिये कि वह "युगों के रूढ़ संस्कारों और रागद्वेषों की अस्वस्थ, निर्जीव परंपराओं के स्थान पर नये भाव-मूल्यों, नये सौंदर्य-मानों और साहित्य और समाज के नये संबंधों की स्थापना ऐसे व्यापक आधार पर करना है, जिसमें प्राचीन की स्वस्थ और प्राणदायक परंपराओं का भी नये वस्तु सत्य के स्पर्श से नित्य नूतन संस्कार होता चले और इस प्रकार वे अपने को अक्षुण्ण रख सकें, और हमारे वर्तमान और भावी जीवन को प्राचीन ज्ञान और भाव-सौंदर्य की निधि से निरंतर समृद्ध करती चलें।" प्रगति-

वाद का महत्व उनके अनुसार यही है कि उसने साहित्यालोचन को एक व्यापक जीवन-दर्शन का आधार दिया है। अपने प्रसिद्ध निबंध "मानव आत्मा के शिल्पियों से" में उन्होंने लिखा--"पंद्रह साल हो गये जब से मार्क्सवाद, कम्युनिस्ट पार्टी, और जनता का सक्रिय कार्यकर्ता रहा हूँ, आजीवन रहूँगा, यही मेरा जीवन है, यही मेरा वस्तु-दर्शन और विज्ञान है, केवल पढ़-लिखकर पाया हुआ ही नहीं, वरन् उपचेतना में आतमसात् होकर रक्तमांस में घुल-मिलकर हृदय में पुनः जमा वस्तु ज्ञान के इंद्रियज बोध के साथ-साथ मन में सतत पनपा, वृत्तिग्रों, संवेदनों, मनोवेगों और सहज भाव प्रतिक्रियाओं के सहारे चेतना में विकास पाया--मार्क्सवाद मेरे जीवन का विश्वास है।"

डॉ० रांगेय राघव ने "प्रगति" तथा "प्रगतिशील साहित्य" की व्याख्या करते हुये लिखा है--"प्रगति जन-कल्याण है, कितनी अधिक, कितनी कम, इसका निर्धारण प्रगतिशीलता के मानदंड कर सकते हैं। प्रगति संसार में सदैव रही है--जीवन में भी, साहित्य में भी, किंतु अब हम जिसे प्रगतिशीलता कहते हैं, वह सामाजिक तथा राजनीतिक विश्लेषण के आधार पर स्थित है और उसी के आधार पर हम किसी कवि को तत्कालीन समाज और तत्कालीन राजनीति में सापेक्ष्य रूप से रखकर उसकी आलोचना करते हैं।" तथा "प्रगतिशील साहित्य उस शाश्वतवाद का विरोधी नहीं है जो समाज और राजनीति को "माया" समझकर दूर रहता है और इस प्रकार शोषण को सहायता नहीं देता। वह शाश्वतवाद व्यक्ति का अपना विश्वास है। यदि वह राजनीति और समाज पर अपना बुरा प्रभाव डालता है, तो वह विरोध का पात्र है, अन्यथा व्यक्ति के मन का वह उपासना-क्षेत्र है, जिसकी कोई सामाजिक जिम्मेदारी नहीं है तो प्रगतिशील साहित्य उसका विरोध नहीं करता।"

"गद्य पथ" में कविवर पंत ने काव्य तथा जीवन आदि विषयों

पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उनका विचार है कि भारतीय दर्शन के नाम पर अंधविश्वासों का अनुसरण नहीं करना चाहिये। उन्होंने लिखा है—"भारतीय दर्शन की दृष्टि से मुझे अपने देश की संस्कृति के मूल उस दर्शन में नहीं मिलते जिसका चरम विकास अद्वैत वाद में हुआ है। यह मध्यकालीन आकाश-लता शताब्दियों के अंधविश्वासों, रूढ़ियों, प्रथाओं और मतमतांतरों की शाखा-प्रशाखाओं में पुंजीभूत और विच्छिन्न होकर एवं हमारे जातीय जीवन के वृक्ष को जकड़ कर उसकी वृद्धि रोके हुए है। इस जातीय रक्त को शोषण करने वाली व्याधि से मुक्त हुए बिना, और नवीन वास्तविकता के आधारों और सिद्धांतों को ग्रहण किये बिना, हममें वह मानवीय एकता, जातीय संगठन, सक्रिय चैतन्यता, सामूहिक उत्तरदायित्व और विपत्तियों का निर्भीक साहस के साथ सामना करने की शक्ति और क्षमता नहीं आ सकती जिसका कि हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में महाप्राणता भरने के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता है।"

उपर्युक्त आलोचकों के अतिरिक्त कृष्णविहारी मिश्र, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रामकृष्ण शुक्ल "शिलीमुख", विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, ललिताप्रसाद सुकुल, डा० धीरेंद्र वर्मा, डा० नगेंद्र, परशुराम चतुर्वेदी तथा डा० भगीरथ मिश्र आदि का नाम श्रेष्ठ आलोचकों में लिया जाता है। नयी पीढ़ी के आलोचकों में डा० देवराज, "अज्ञेय", नलिनविलोचन शर्मा, डा० कन्हैयालाल सहल तथा डा० देवराज उपाध्याय आदि का नाम उल्लेखनीय है।

एक साहित्य सर्जक, जो उच्चकोटिया स्थायी कोटि का सृजन करना चाहता है, के लिए यह आवश्यक है कि वह जिन अनुभूतियों को अपनी कृति में अभिव्यक्त करे. उनमें अधिक गहराई, अधिक पकड़ और अधिक स्पष्टता हो। एक पाठक किसी लेखक द्वारा प्रस्तुत की गयी कृति का रसास्वादन करता है और एक समीक्षक

उस कृति का विश्लेषण या व्याख्या करता है। समीक्षा के उच्चतम मान के अनुसार एक समीक्षक को यह देखने की चेष्टा करनी चाहिए कि किसी साहित्यकार की किसी कृति ने किस प्रकार अपना वर्तमान अपने युग की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के फलस्वरूप ग्रहण किया है और यह भी कि उस कृति ने उस युग के यथार्थ का उद्घाटन के उस युग की सामाजिक प्रगति में क्या योग दिया है।

आज के समीक्षकों के सामने दृष्टिकोण की समस्या भी काफी महत्व रखती है। सीधे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बिना दृष्टिकोण के समीक्षा अपूर्ण रह जाने की सम्भावना है। लेकिन, इसके साथ ही साथ यह प्रश्न भी विचारणीय होगा कि समीक्षक के पास मूल्यांकन का यह दृष्टिकोण कैसा हो। और इससे जुड़ा हुआ एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि क्या दृष्टिकोण के अभाव में सन्तुलित अथवा पूर्ण समीक्षा हो ही नहीं सकती। ये प्रश्न व्यापक है और विस्तार की अपेक्षा रखते हैं, जो यहाँ सम्भव नहीं है। फिर भी, यह कहा जा सकता है कि दृष्टिकोण के प्रश्न पर विचार करते समय यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि मूल रूप से दृष्टिकोण समीक्षा का एक अंग मात्र है, और उसका मुख्य उद्देश्य यह है कि वह किसी कृति में अभिव्यक्त की गयी अनुभूति की व्याख्या करे और उसे अपेक्षाकृत स्पष्ट और तीखा बनाये।

आज हिंदी साहित्य में बहुधा यह बात कही जाती है कि समकालीन समीक्षकों के द्वारा उचित दिशा-निर्देशन के अभाव के फलस्वरूप श्रेष्ठ साहित्य-सृजन की संभावनायें कम हो रही हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जो साहित्य लिखा जा रहा है, उसके मूल्यांकन के लिये ठोस प्रयत्न नहीं किये जाते। तात्पर्य यह है कि आलोचकों की उदासीनता के कारण नये साहित्य के सही मूल्यांकन की चेष्टाएँ कम हो रही हैं। इसी का परिणाम यह दिखायी दे रहा

है कि साहित्य के विभिन्न अंग प्रगति के मार्ग पर अग्रसर तो होते हैं, और नित्य नये मोड़ पर आकर आगे बढ़ने की चेप्टा भी करते हैं, परंतु उपर्युक्त निर्देश के अभाव में किसी निश्चित मार्ग पर अग्रसर नहीं हो पाते। यह प्रवृत्ति इस क्षेत्र में किसी सीमा तक हिंदी आलोचकों की उदासीनता का परिचायक है, जो साहित्य के विकास के मार्ग में बाधक सिद्ध हो सकती है।

उपर्युक्त तथ्य का एक दूसरा पहलू भी है। और उसके अनुसार, एक दृष्टि से देखने पर आज साहित्य में आलोचना के क्षेत्र में ही सबसे अधिक क्रियाशीलता दिखाई देती है तथा नये साहित्य का यही अंग सबसे अधिक समृद्ध जान पड़ता है। वैसे यदि वास्तविकता यही है, तो कुछ बुरा नहीं है, और यह हमें किसी सीमा तक आशान्वित ही बनाता है, क्योंकि साहित्यिक विकास की नयी धाराओं के साथ ही साथ यदि समीक्षा के क्षेत्र में भी विकास की दिशायें परिलक्षित होती रहती हैं, तो साहित्य की सर्वांगीण उन्नति की संभावनायें बढ़ जाती हैं। लेकिन इसके लिये कुछ अन्य बातों का समावेश आलोचना में होना आवश्यक है, जिसका हिंदी की नयी आलोचना में अभाव जान पड़ता है। इसका मुख्य कारण यह है कि समीक्षा का कार्य जितना दुस्तर है और जितना परिश्रम उसमें करने की आवश्यकता है, वह आज बहुत से आलोचक अनावश्यक समझते हैं, तथा उससे संबंधित अन्य दायित्वों को भी एक प्रकार से दरगुजर करना चाहते हैं। और चूंकि यह प्रवृत्ति साहित्य के विकास में बाधक सिद्ध हो सकती है, इसलिये आज यह समस्या हिंदी-साहित्य में काफी गंभीर बन गई है।

हिंदी की नयी समीक्षा पाश्चात्य ढंग की होती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आज हिंदी में जो श्रेष्ठ समीक्षक हैं, वे प्रायः समीक्षा और साहित्य की विभिन्न धाराओं का ही आधार लेते हैं और उन्हीं में से भिन्न-भिन्न वादों के समर्थक हैं।

और आगे भी नित्य नये वादों के नाम सुनायी पड़ते हैं तथा उनकी पुष्टि के लिए विश्लेषणात्मक वक्तव्य लिखे जाते हैं। शायद यह कहना गलत न होगा कि हिंदी में अब तक वादमुक्त धरातल पर समीक्षा करने का प्रयत्न नहीं किया गया है, यद्यपि इस प्रकार की समीक्षा का औचित्य कहाँ तक है, यह दूसरी बात है। हाँ, अब यह धारणा दृढ़ बनती जा रही है कि सम्भवतः कोई भी समीक्षक अपने आपको वादों के जाल से पूर्णतः मुक्त नहीं रख सकता। इसीलिए कुछ लोगों को अब निष्पक्ष और वादमुक्त समीक्षा व्यवहार की वस्तु नहीं जान पड़ती। हमारे विचार से हिंदी के नये समीक्षक जहाँ एक ओर अपने दायित्वों को समझने की चेष्टा कर रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर उनके निर्वाह के लिए भी प्रयत्नशील हैं। आलोचना के भावी विकास की दृष्टि से यह एक शुभ लक्षण है।